लीलाशुक श्रीबिल्वमंगल
कृत

श्री कृष्ण कर्णामृत (पृ०20-48)

एवम्

श्री गोविन्द दामोदर स्तोत्र (पृ० 49-64)

Shri Krishna Karnamrit
&
Govind Damodar Storam

by

Leela Shuk Shri Bilva Mangal

संकलन: श्री श्यामदास

संशोधन: डा० सुरेन्द्र वर्मा

सम्पादकीय

परम करुणामय कलियुग–पावनावतार भगवत् श्रीशचीकुमार देव महाप्रभु के अतिप्रिय कोषकाव्य–''श्रीकृष्णकर्णामृत'' का यह संस्करण श्रीकृष्णभक्त–समाज के करकमलों में प्रस्तुत करते हुए अतीव हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ।

''श्रीकृष्णकर्णामृत''–वह अमृत है जो श्रीकृष्ण के कानों को अनुपम रस आस्वादन कराने वाला है। श्रीमन्महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य जब दक्षिण यात्रा करते हुए कृष्णवेण्वा नदी तीरस्थ देव मन्दिरों के दर्शन कर रहे थे, वहाँ उन्होंने वैष्णव ब्राह्मणों में जगह–जगह इस श्रीकृष्णकर्णामृत का पाठ होता देखा। उन्होंने जब इसके दो–चार श्लोक सुने तो आनन्दित हो उठे। आपने आग्रहपूर्वक इसकी एक हस्त–लिखित प्रति तैयार करा ली और अपने साथ ले आये नीलाचल। श्रीरायरामानन्द, श्रीस्वरूपदामोदर और सब भक्तों को दिखाकर बोले, साध्य–साधन विषयक समस्त सिद्धान्तो का आकर है यह। श्रीकृष्णसाक्षात् करने वाले प्रेमोन्मत्त श्रीलीलाशुक का प्रलाप होते हुए भी शुद्ध कृष्णप्रेम का द्योतक रत्न है। रागानुगीय भजनकर्त्ताओं के लिए अनुपम पथप्रदर्शक है मधुर–लीलाराज्य में प्रवेश के लिए। श्रीमन्महाप्रभु ने इसका निरन्तर आस्वादन किया और भजनशिक्षा के छल से इसका भक्तों को आस्वादन कराया। यह एक अनिर्वचनीय रसमयी वस्तु है इस विषय मे और कुछ कहना बाकी क्या रह जाता है ? श्रीमन्महाप्रभु को इसका आस्वादन करते देखकर बंगाल के भक्तों ने इस महारत्न को कण्ठहार ही बना लिया था।

रसिककुल–मुकुटमणि श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी ने इस रचना के विषय मे अपना अभिमत प्रकट करते हुए कहा–

कर्णामृत-सम वस्तु नाहि त्रिभुवने।
जाहा हइते हय शुद्ध कृष्णप्रेम ज्ञाने।।
सौन्दर्य माधुर्य कृष्णलीलार अवधि।
से जाने जे कर्णामृत पढ़े निरवधि।।

(श्रीचै० चरि० २/९/२७९–८०।।)

श्रीकृष्णकर्णामृत के समान त्रिभुवन मे रसमय और कोई ग्रन्थ नही है। इसके द्वारा श्रीकृष्ण के शुद्धप्रेम का ज्ञान प्राप्त होता है। इसमे श्रीकृष्ण के सौन्दर्य, माधुर्य तथा लीला की पराकाष्ठा है, यह बात तो केवल वही अनुभव कर सकता है, जो नित्य इसका पाठ, अनुशीलन करता है।

यह संस्कृत साहित्य भण्डार का एक अलौकिक अनूठा रत्न तो है ही, इसके भाव जितने सरल है, उतने उच्चतम, गम्भीर भी है, भाषा जितनी पवित्र है, उतनी ही सुललित एव सुमधुर भी है। 'श्रीकृष्णकर्णामृत' केवल पाठ की वस्तु नही, इसमे निरन्तर आस्वादन की सुधाविनिन्दी दिव्य सामग्री है। श्रीवृन्दावनीय माधुर्यरस का यह अक्षय निर्झर है। अवश्य, श्रीगुरु–महत्‌जनो के अनुग्रह तथा आनुगत्यपूर्वक अनुशीलन के विना इस ग्रन्थ का वास्तव तात्पर्य हृदयगम होना असम्भव है।

श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामिपाद ने श्रीगोविन्दलीलामृत, श्रीचैतन्यचरितामृत की भाँति तीसरा अमृत उडेला है श्रीकृष्णकर्णामृत की 'सारगरगदा' रसमयी टीका मे। उसके माध्यम से ही इस गम्भीर माधुर्यसागर के एक कण मात्र का आस्वादन सम्भव है। ग्रन्थ विस्तार

भय से तथा कुछ अधिकार भूमिका पर दृष्टिपात करते हुए प्रस्तुत संकलन में उस टीका का उल्लेख देने का साहस नहीं किया गया है। परन्तु उन्होंने श्लोकों का जो सूची-निर्देश किया है उसे यहां उद्धृत करते हैं-

प्रथम श्लोक में मंगलाचरण, दूसरे में वस्तुनिर्देश, तीसरे में लीला में आत्मप्रवेशानुभव वर्णित है। ४ से २१ श्लोकों में स्फूर्ति-प्रार्थना, २२-श्लोक में आत्म-निश्चय, २३ से ५५ श्लोकों तक स्फूर्ति में दर्शन प्रार्थना, ५६-६० श्लोक में स्फूर्ति-साक्षात्कार-भ्रम, ६१-६७ श्लोकों में पुनः दर्शनोत्कण्ठा, ६८-९५ श्लोकों में साक्षात्कार के बाद भगवत्रूप का वाणी-मन द्वारा अगोचरत्व, ९६-११२ श्लोक तक श्रीकृष्ण के साथ कथनोपकथन वर्णित है।

भाव -राज्य में श्रीलीलाशुक की तीन अवस्थाओं का हम दर्शन करते हैं-१-श्रीकृष्णस्फूर्ति में स्फूर्तिज्ञान, २-स्फूर्ति एवं साक्षात्कार के बीच की भ्रममयी दशा तथा ३-साक्षात्कार। श्रीलीलाशुक मधुरभाव के परिकर हैं। इसलिए मधुर-जातीयभाव से उनकी पूर्वराग एवं विप्रलम्भ से लालसा दशा की उत्पत्ति है। अन्त में लालसा की स्फूर्ति होने पर बाहर रासविलासी श्रीकृष्ण की स्फूर्ति के लिए उनमें दैन्य और विकलता भाव का उदय है। वस्तुतः श्रीकविराज गोस्वामीकृत अन्तर्दशा की व्याख्या का माधुर्यामृत आस्वादन कर रसिक समाज कृतार्थ हो सकता है।

श्रीमद्गोपालभट्ट गोस्वामिपाद ने भी श्रीकृष्णकर्णामृत की 'कृष्णवल्लभा' टीका लिखी एवं श्रीकविकर्णपूर के बड़े भाई श्रीचैतन्यदास ने भी इसकी 'सुबोधिनी' नामक टीका लिखी है, और भी कई एक टीकाएँ सुनी जाती हैं, कर्णानन्द-प्रकाशिनी, श्रीवृन्दावनदास कृत टीका, शंकरकृत टीका एवं श्रीपापयल्लयकृत 'सुवर्णचषक' टीका, ये

प्रमुख है। श्रीयदुनन्दन ठाकुर कृत बंगला भाषा मे पद्यानुवाद सारग-रंगदा टीका की सरल व्याख्या है।

श्रीकृष्णकर्णामृत मे ११२ श्लोको के अतिरिक्त और भी दो शतको का दक्षिणदेश मे प्रचार दीखता है। किन्तु श्रीमन्महाप्रभु ने केवल इस प्रथम शतक को आत्मसात किया और श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी ने भी केवल इसी शतक की टीका लिखी है। उन्होंने अन्य दो शतको को स्वीकार नही किया है। वे दोनों शतक श्रीबिल्वमंगल के नाम में आरोपित किये माने जाते हैं, उनकी रचना नही लगती।

यहाँ भी श्रीमहाप्रभु द्वारा स्वीकृत प्रथमशतक को ही प्रकाशित किया गया है। श्रीरूपगोस्वामिपाद ने कई एक श्लोकों को अपने श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुः, श्रीउज्ज्वलनीलमणि मे उदधृत किया है, किन्तु वे सब कृष्णकर्णामृत में देखने को नहीं मिलते। सम्भवतः वे श्रीलीलाशुक की अन्यान्य रचनाओं से लिए गये हैं।

श्रीलीलाशुक की अन्यान्य प्रमुख-रचनाऐं इस प्रकार हैं-

१. श्रीकृष्णबाल-चरित्र—इसमें भगवान् श्रीकृष्ण के बालस्वरूप तथा उनकी बालकेलियों के २८५ श्लोक हैं।

२. श्रीकृष्ण-क्रीड़ा काव्य—इसमें कृष्णक्रीडाओं का सरस वर्णन सुना जाता है, किन्तु यह रचना अनुपलब्ध है।

३. श्रीबिल्वमगल स्तोत्र—३६६ श्लोकों का यह विशाल ग्रन्थ कई अध्यायों में विभक्त है। इसमें प्रधानतः श्रीकृष्णचरित्र वर्णित है। शेषभाग मे शिव, कूर्म, नृसिंहादि अवतारो के स्तोत्र हैं।

४. श्रीकृष्णाहिक-कौमुदी—इसमे श्रीश्रीराधाकृष्ण की एक दिन की अष्टयाम लीला का सुन्दर वर्णन है।

५. सुमंगल–स्तोत्र–यह ग्रन्थ तीन शतकों में विभाजित है। कुल ३८३ श्लोक हैं इसमें। किन्तु अनेक श्लोक श्रीकृष्णकर्णामृत के प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय शतकों में से संगृहीत हैं।

६. श्रीकृष्ण–स्तोत्र–इसमें भी श्रीकृष्णकर्णामृत के द्वितीय और तृतीय शतक के अनेक श्लोक लिए गये हैं। कुल श्लोक संख्या १०६ है।

७. बिल्वमंगल नाम–कोष–इसमें आरम्भ के ८१ श्लोक ज्योंके त्यों श्रीकृष्ण–स्तोत्र के हैं। इस रचना के बंगाल में अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। इसमें कुल १०१ श्लोक हैं।

८. श्रीगोविन्द दामोदर स्तोत्र सानुवाद प्रस्तुत पुस्तक के साथ आस्वादनीय है। उपर्युक्त कुछ रचनाओं को देखने पर ऐसा लगता है कि अन्यान्य भक्तों ने श्रीलीलाशुक की प्रमुख रचनाओं में से रुचि अनुसार कुछ श्लोक संग्रहकर एवं उनमें स्वरचित श्लोक जोड़कर विभिन्न नामों से संकलनों को प्रकाशित किया है, अस्तु।

वक्तव्य यह है कि प्रस्तुत ग्रन्थ–रत्न श्रीकृष्ण–सौन्दर्य माधुर्य का अथाह सागर है। श्रीमन्महाप्रभु के परमास्वादनीय सम्बलरूप में यह स्वीकृत हुआ है। केवल गौड़ीय–वैष्णवों का ही नहीं विश्व–वैष्णवसमाज का अमूल्य कण्ठहार है।

मेरा विश्वास है कि इसका पाठ, मनन एवं गम्भीर चिन्तन करते हुए साधक श्रीकृष्णकर्णामृत को महाप्रभु श्रीगौरांगाधरामृतरूप में आस्वादन कर कृतार्थता लाभ करेंगे एवं श्रीगोविन्द दामोदर स्तोत्र में व्रजलीलारस में अवगाहन करेंगे।

वैष्णवपदरजाभिलाषी

श्रीश्यामदास

लीलाशुक श्रीबिल्वमंगल

भारतीय परम्परा में तथ्य की अपेक्षा तत्त्वका महत्व सदा अधिक आँका गया है। भगवान् श्रीवेदव्यासजी ने सर्व–विषद समीचीन इतिहास–ग्रन्थ 'महाभारत' की रचना की। उनके बाद अनेक मनीषियो ने भी अनेक चरित्र–ग्रन्थों का प्रणयन किया। चारो युगो के भारतीय सनातन धर्मावलम्बी आचार्यों, भक्तो के बिखरे चरित–रत्नो को गूँथा 'श्रीभक्तमाल' नामक अनुपम अभूतपूर्व माला में स्वामी श्रीनाभाजी ने। तदनन्तर उन दुर्बोध एवं गम्भीर–आशय चरित–रत्नों को सोने में जड़कर विस्तृतरूप में विभूषित किया गौड़ीय वैष्णव कविराज श्रीमनोहरदासजी के कृपापात्र श्रीप्रियादासजी ने कवित्तमयी 'भक्तिरस बोधिनी' टीका द्वारा। उनके बाद उक्त टीका के आधार पर परवर्ती अनेक महानुभावों ने विभिन्न भाषाओं मे भक्त–चरित्रो का चित्रण किया।

किन्तु सबने तात्त्विक पृष्ठभूमि पर सुनिष्ठित होकर चारित्री के चरित्र, आदर्शमय व्यक्तित्व एवं उसकी पारमार्थिक विशिष्ट–उपलब्धियों को ही महत्व दिया, ताकि आनेवाली साधक–पीढ़ियाँ उनके आदर्श–चरित्रों का, उनकी शिक्षाओं का अनुकरण कर सकें। किसी ने भी आधुनिक–ऐतिहासिक रूपरेखा में सन्–संवत्, घटनास्थलों का विवरण अथवा माता–पितादि वंश परिचय प्रभृति के उल्लेख या अनुसन्धान करने की मगजपच्ची नहीं की। उन्होंने उस विषय को अति बाह्य एवं परमार्थ–पथ मे नितान्त अनावश्यक जानकर कुछ भी महत्व नही दिया।

यही कारण है कि 'श्रीकृष्णकर्णामृत–के रचयिता रसिकशेखर महाकवि लीलाशुक श्रीबिल्वमंगल के जीवन–वृत्त मे ऐतिहासिक–तथ्यो की मान्यताओ में कुछ वैमत्य दीखता है, किन्तु पारमार्थिक तत्त्व फलकपर इनकी छबि मतैक्य में ही उजागर हुई है।

दक्षिण भारत में कृष्णवेण्वा के पश्चिम तीरपर स्थित एक ग्राम में कुलीन ब्राह्मण–वंश में श्रीबिल्वमंगल का (अनुमानतः बारहवीं शताब्दी ई० में) जन्म हुआ। अति सुपण्डित, धैर्यवान थे ये। इनके पिता का नाम कुछ टीकाकारों ने 'रामदास' माना है। किन्तु श्रीकृष्णदास कविराज ने श्लोक ११० की टीका में इनकी माता का नाम 'नीवी' तथा पिता का नाम 'दामोदर' उल्लेख किया है–

ईशानदेव-चरणाभरणेन नीवी
दामोदर-स्थिरयशः स्तवकोद्भवेन।
लीलाशुकेन रचितं तव कृष्णदेव
कर्णामृतं बहतु कल्पशतान्तरेऽपि।।

'श्रीराधाविलासी–कृष्ण के चरण–चंचरीक नीवि–दामोदर के स्थायी यश–गुच्छ से उत्पन्न लीलाशुक द्वारा रचित यह कृष्णकर्णामृत शत–शत कल्पों तक भक्तों के हृदय में आनन्द–सागर प्रवाहित करे।'

कृष्णवेण्वा नदी के पूर्व पारपर एक नगर था, वहाँ 'चिन्तामणि नाम की एक वेश्या रहती थी। वाद्य–नृत्य–गान में अति निपुणा तथा अति रूपवती थी वह। किसी कार्यवश श्रीबिल्वमंगल उस नगर में गये और वहाँ उस वेश्या का नृत्य–गान देखा। पूर्व–जन्म की दुर्वासना के वश ये उसे देखते ही मुग्ध हो गये। ये भी ब्रह्मतेज युक्त, नवयौवनपूर्ण अति रूपवान थे। चिन्तामणि भी इनपर लट्टू हो गई। उसने भी इन्हें छोड़कर अन्यत्र कहीं जाना–आना बन्द कर दिया।

कहते हैं एक बार उसी के प्रेम की परीक्षा के लिए भगवान् श्रीकृष्ण बने राजा और श्रीनारदजी बने मन्त्री। अपने दरबार में उसे बुलवा भेजा। अनेक धन–लोभ दिखाने पर भी वह वहाँ नहीं गई। श्रीभगवान् इसके लौकिक अनन्य–प्रेमपर मन–मन में बड़े प्रसन्न हुए।

अब तो बिल्वमंगल ने अपने घरपर जाना भी छोड़ दिया। उस वेश्या के घर पर पड़े रहते। पिताजी अति दुःखी होकर मर गये। घर में अति कुलीन पतिव्रता ब्राह्मणी थी, किन्तु इनकी प्रसन्नता में प्रसन्न रहकर वह जैसे–तैसे जीवन का निर्वाह करती थी। पिता के श्राद्ध का

दिन था। ब्राह्मणी ने सोचा कि पतिदेव आज आकर किसी प्रकार पिताजी का श्राद्ध तो कर जायें। वह चिन्तामणि के घर गई। अति विनीत होकर उसने एक दिन के लिए अपने पति की भीख माँगी। उस वेश्या का मन उस साध्वी के वचनों से प्रभावित हुआ और इन्हें उसके साथ घर भेज दिया।

कामदेव के प्रबल वेग ने रात्रि समय प्रेमिका-मिलन के लिए इन्हें बेचैन कर दिया। अन्धेरी रात का समय घर से निकल पड़े। साध्वी ब्राह्मणी ने इनको पकड़ने के लिए पीछा किया, किन्तु न जाने ये किस रास्ते से ओझल हो गये। ब्राह्मणी ऊपर की दिशा में नदी पर पहुँची, किन्तु इन्हें न देखकर अति दुःखी हो उठी और नदी में डूब कर मर जाना ही अच्छा समझा, कूद पड़ी अथाह जल में। डूबकर प्राण निकल गये और प्रबल धारा में उसका मृतक–शरीर बह चला।

इधर ये नदी के प्रवाह की नीची तरफ पहुँचे। नदी के अथाह जल को देखकर बिना नौका कैसे पार जाया जाये ? बिल्वमंगल कुछ देर के लिए सोच–विचार में पड़ गये। आज चिन्तामणि के बिना भी प्राण नहीं रह सकते और नदी में कूदने पर भी प्राणों का अन्त है, 'क्या करना चाहिए ?' कामान्ध, विवेकशून्य बुद्धि ने यही निर्णय लिया प्रेमिका चिन्तामणि का नाम लेकर नदी में डूब जाना कहीं अच्छा है उसके विरह में जीने से। ये भी कूद पड़े नदी में चिन्तामणि का नाम लेकर।

'चिन्तामणि' नाम श्रीकृष्ण ने अपना ही समझा और मनमें बिल्वमंगल के अनन्य–प्रेम का मूल्यांकन करते हुए सोचा–'ऐसा प्रेमी तो मैं सदा ढूँढ़ता रहता हूँ। इसे ही अब मुझे अपना बनाना है।' हाथ–पांव मारते–मारते डूबने को ही थे बिल्वमंगल कि साध्वी पत्नि का शव उधर से बहता हुआ पास आकर मानो बोला–'पतिदेव ! मैं ले आई थी आपको एक दिन के लिए भीख माँगकर। आपको चिन्तामणि के पास पहुँचाना मेरा दायित्व है, आओ, मुझे नौका बनालो।

बिल्वमंगल ने मनमे चिन्तामणि की दूरदर्शिता की सराहना की, कैसी नौका भेज दी है मेरे लिए। नौका समझकर पत्नि–शवपर बैठकर नदी के पूर्वीपार पहुँचे। बहुत रात निकल चुकी थी चारों ओर अन्धकार एव नीरवता का साम्राज्य था। वस्त्र तो भीग रहे थे, सास की गति तेज थी, फिर भी तेजीसे प्रेमिका के घर पहुँचे। किवाड़ बन्द थे। ऊपर निगाह उठाई तो एक रस्सी सी लटकती देखी। उसे पकडकर छतपर पहुँचे और वहाँ से आँगन में कूदे। भीतर–बाहर अन्धकार तो छा ही रहा था, गन्दी नाली में जा पड़े।

आहट पाकर चिन्तामणि की सेविका दिया–बत्ती लेकर देखती है तो बिल्वमंगल, किन्तु बेहोश–अवस्था में। मालिकनी चिन्तामणि बाहर आई। कौन ? सेविका ने कहा, मंगल। हाय ! हाय ! यह मंगल है कि मूर्तिमान अमंगल ? चिन्तामणि ने देखा कीच से सना क्षत–विक्षत शरीर था। इन्हें स्नान कराया। सूखे वस्त्र दिये। जब थोड़े सम्भले तो चिन्तामणि ने दुःखी होकर पूछा–

पहले यह बताओ, तुमने कैसे तो नदी पार की और कैसे चढ़े छतपर ? ये बोले, *'नौका पठवाई, द्वार लाव लटकाई, देखि मेरे मन भाई, मैं तो तबैं लई जानिकै'* प्रिये ! मुझसे पूछ रही हो ? तुमने तो मेरे लिए नौका भेजी, और छतपर मेरे चढ़ने को मजबूत रस्सी लटका रखी है तुमने, मुझे तो यह तेरी सूझ अति उत्तम लगी, कितना ध्यान और कितना स्नेह है तुम्हारा मेरे प्रति !

चिन्तामणि बाहर आई, देखा तो महा विषधर साँप लटक रहा है, जिसे पकड़कर ये छतपर चढ़े थे। समझ गई कि नौका भी इस कामान्ध को ऐसी ही कोई वस्तु मिली होगी। चिन्तामणि के नेत्रों से आँसू फूट पड़े। अपने को लाख–लाख धिक्कार करती हुई बोली–

''जैसो मन मेरे हाड़-चाम सौं लगायो
तैसो श्याम सौं लगावो तो पै जानिये सयानिके।
मैं तो भये भोर, भजौं युगल-किशोर,
अब तेरी तुही जानै, चाहौ करौ मन मानिकै।।

'अरे मूर्ख ! धिक्कार है तुम्हें, तूने जैसे मेरे हाड चाम के शरीर में मन लगाया है, उसी प्रकार यदि तूने श्यामसुन्दर भगवान् मे मन लगाया होता, तो तुम्हे सयाना जानती। मैं तो सवेरा होते ही श्रीयुगल किशोर के भजन मे लगूँगी, तू जान और अब तेरा जाने काम।'

चिन्तामणि की सच्ची फटकार ने हृदय के किवाड खोल दिये 'धिक्कार ! धिक्कार' कहते हुए ये ज़ार—जार रोने लगे माथा पीटते हुए चिन्तामणि ने स्वय वीणा पकड़ी और मृदग लाकर सामने रखा इनके। आरम्भ किया गान श्रीयुगलकिशोर की सुखपुज निकुज लीला का। अपूर्व, भजनानन्द मे आज की रात क्षणभर में बीत गई। सवेरे चिन्तामणि वीणा लेकर हरिगुण गाती प्रेमरस—माती होकर जाती किसी ने न देखी कि किधर गई।

इन्होंने सवेरे उठते ही चिन्तामणि को गुरुरूप मे प्रणाम किया और निटकवर्ती श्रीसोमगिरिजी के आश्रमपर पहुँचे। आपबीती सुनाकर उनके चरणों में दीक्षा का साग्रह निवेदन किया। भक्तिकल्पतरु के विकास का पहला अंकुर है गुरुदीक्षा। अनन्यमन होकर श्रीगुरुदेव की सेवा करते हुए ये एक वर्ष तक उनके आश्रम पर रहे। मन लगाना तो इन्हें आता ही था। उनकी कृपा से ब्रजविहारी श्रीकृष्ण का प्रेम हृदय मे उछल उठा। भक्तिरसमय काव्यों का, भक्ति शास्त्रों का अध्ययन करने से अद्भुत भावपूर्ण श्लोकों में कृष्णलीला गान करने लगे ये। रसिक मुकुटमणि श्रीशुकदेव मुनि की भाँति सरस श्रीकृष्ण—लीलाकीर्तन की अद्भुत शक्ति का विकास इनमें देखकर श्रीगिरिजी ने इन्हें 'लीला—शुक' नाम प्रदान किया। तभी से यह 'लीलाशुक बिल्वमंगल' नाम से विख्यात हुए।

श्रीगुरुदेव से आज्ञा ले श्रीवृन्दावन की ओर चल दिये, क्योंकि कृष्णप्रेम भक्त की अन्यत्र अवस्थिति सहन नहीं करता। प्रेमी को यह धुन सवार हो जाती है—

चल मन वृन्दावन चलि रहिये।
परम पुनीत वह ब्रज की धरणी रजधरि शीश जनम-फल लहिये।।

मंजुल सघन पुलिन यमुनातट सुन्दर पर्णकुटी चल छहिये।
विहरत आवहिं युगलजाल जब मनकी व्यथा-कथा सब कहिये।।
सन्त टूक लहि पाय जमुन जल मिलि रसिकन राधावर गइये।
"श्याम" कृपा कब ऐसी करिहो, चल वृन्दावन लौट न अइये।।

प्रेमविभोर होकर श्रीबिल्वमगल वृन्दावन के पथ पर चल दिये। मार्ग मे एक रमणीक सरोवर देखा। वहाँ पर कुछ दिन विश्राम करने के लिए रुक गये। प्रेमविभोर होकर श्रीयुगलकिशोर की लीला—माधुरी मे सदा हिलोरें भरते। कौन आया, कौन गया, इनको कुछ सुध न रहती। गाँव के लोग इनकी प्रेमावस्था देख—देखकर इनके प्रति श्रद्धायुक्त हो उठे। अन्न—दूध फलादि इनके पास रख जाते। इनका प्रण था—'*युगल रूप बिनु नयन न खोलूँ त्रिभुवन सों कहा मेरो।* आने—जाने वाले को देखते हुए भी न देखते हुए से रहते थे ये।

चारों ओर से आने—जाने वाले इनके प्रेम की प्रशंसा करने लगे। अतिशय मान—प्रतिष्ठा बढ़ने लगी। ये भी मन में सोचने लगे—'मैं भगवान् का इतना ऊँचा प्रेमी ! फिर भगवान् जाने मुझे क्यों दर्शन नही देते, वास्तव में वे बड़े निष्ठुर हैं।' श्रीभगवान् भी तो यही देखा करते हैं—'भक्त किस पानी में है ? परिपक्व हो गये कषाय इसके, कि अभी कच्चे हैं ? भक्ति का अभिमान एवं अपनी श्रेष्ठता—प्रतिष्ठा का घुन तो इसे अन्दर से खोखला नही कर रहा है ?' दूसरी ओर श्रीभगवान् लोकशिक्षा के लिए अपनी लीला के पात्रों को निशाना बनाते हैं। माया, इन्द्रियों तथा विषयों की प्रबलता भी तो ऐसे भक्तों के साथ दो—दो हाथ करने को सामने आती है।

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।। गी० २।६०

हे अर्जुन ! यत्न करते हुए भी बुद्धिमान पुरुष के मन को यह प्रमथन स्वभाव वाली इन्द्रियाँ बलपूर्वक हर लेती हैं। कैसी जन्मान्तरीण विषय—वासना ! क्या घटना घटती है कि एक सुन्दर युवती सरोवर पर सन्ध्या के समय जल लेने पहुँची। उसने स्नान किया। एक ही

दृष्टि में उसकी रूप–छटा, अंगशोभा देखते ही इनका सब भजन–नेम, धैर्य–प्रेम, सरोवर के पानी में बह गया, वह तो पानी का कलसा ले घर को चली और ये पीछे लग गये उसके। वह घर के भीतर और ये बाहर द्वारपर जम गये।

उस युवति का पति अपने काम से घर लौटा। सरोवर वाले प्रेमी बाबा को दरवाजे पर बैठा पाया। प्रणामकर अन्दर सादर ले गया इन्हें। गृहिणी से इनको भिक्षा देकर विदा न करने का कारण पूछा। पत्नि ने सब बात सुनाई। पति ने कहा–'आज तुम सोलह शृंगार कर इस वैष्णव–सन्त की मन–चाही सेवा करो। इससे बढ़कर तुम्हारा सुहाग–सौभाग्य क्या हो सकता है ? इस सेवा से हमें निश्चित श्रीभगवान् की प्राप्ति होगी।'

पति की आज्ञानुसार वह पतिव्रता साध्वी इनके पास सज–धजकर एकान्त में पहुँची। किन्तु श्रीभगवान् ऐसी पतिव्रता साध्वी के पतन और अपने प्रेमी–एकान्त भक्त के कुविषय–गर्त में गिरने को कब देख सकते थे ?

ये बोले–'देवि ! दो मोटी सी सुई लेकर आओ।' वह झट दो सुईयाँ ले आई। इन्होंने अपने हाथ में लेकर अपनी दोनों आँखें फोड़ डाली यह कहकर 'भूतनियो ! सब दोष तुम्हारा है। तुम्हारे दोष से आज तक मैंने कुकर्म कमाये अनेक दुःख पाये। सारा जीवन बरबाद किया। आज फिर तुम मुझे धोका देकर नरक में ढकेलना चाहती हो।' आँखों से रक्तधारा बहती देख अति चिन्तित हो साध्वी युवती पति के पास दौड़ी आई। सब बात सुनाई। भक्त–पति ने इनके पाँव पकड़े। अपने अपराध को पूछा। इन्होंने कहा–'हे महाभाग ! तुम अपराधी नहीं हो। मैं ही परम अपराधी कामान्ध हूँ। मेरा वेष साधु का है, तुम्हारा आचरण साधुता की सीमा है। तुम जैसी जोड़ी आज तक नहीं देखी, परम सौभाग्यवती जगत्‌जननि तुल्य है यह साध्वी। आप अब मेरे अपराध को क्षमा करो'–ऐसा कहकर पश्चाताप करते, अपने को कोसते धिक्कारते हुए ये फिर वृन्दावन की ओर चल दिये। बाहरी

आँखें फूट चुकी थीं, हृदय की आँखों की ज्योति इनका सहारा बन गई। चलते–चलते दो दिन के बाद निर्जन जंगल में एक स्थान पर आकर बैठे। भूखे–प्यासे, अति थके–मान्दे थे, मनमें अति ग्लानि तो थी ही।

करुणामय की करुणा की विशेषता तो यही है कि अपराधी, संस्कारवश कुमार्ग–गामी भक्त का भी पीछा नहीं छोड़ती। होना चाहिए भक्त, अपने अपराधों को स्वीकार कर अपने को धिक्कारने वाला भक्त।

रहमत यह चाहती है अपनी ज़बां से।
गुनहगार कह दे कि तकसीर हो गयी।।

भगवत् कृपा का अनुरोध है कि अपराधी अपने मुँह से अपने गुनाह को स्वीकार करले। श्रीभगवान् इनके पास आये, भोजन–पानी साथ लाये। इन्हें भोजन कराया। फिर बोले–'सूरदास ! अब दिन बीत गया है, कहीं छाया में चलकर विश्राम करो। इन्होंने भगवान् का हाथ पकड़ा। उन्होंने एक घने वृक्ष की छाया में लाकर इन्हें बैठाया। अब जाना चाहते थे लीलाधारी, उन्होंने हाथ छुड़ाना चाहा। किन्तु ये उस परम कोमल, सुखद–मृदुल करकमल को कैसे छोड़ते ? कसकर पकड़ लिया। ये तो जान चुके थे उसके स्पर्श मात्र से, यह हाथ अनाथों के नाथ व्रजनाथ का है।

इन्होंने श्रीभगवान् का हाथ पकड़ा हुआ था, श्रीभगवान् ने एक झटका दिया और छुड़ाकर दूर खड़े हो गये। हाँ, यदि श्रीभगवान्ने इनका हाथ पकड़ा होता, तो दूसरी बात होती। श्रीभगवान् इन्हें कभी न छोड़ते, इनके छुड़वाने पर भी। वे केवल पकड़ना जानते हैं, छोड़ना नहीं। श्रीबिल्वमंगल व्याकुल होकर बोले।

हस्तमुत्क्षिप्य यातोऽसि बलात्कृष्ण किमद्भुतम्।
हृदयाद्यदि नियासि पौरुषं गणयामि ते।।

बाँह छुड़ाये जात हो निबल जानिकै मोहिं।
हिरदय से जब जाओगे सबल बदौंगो तोहिं।।

उस समय से इन्होंने श्रीकृष्ण–व्रजबिहारी को हृदय मे और भी मजबूती से पकड़ लिया। अन्धे की पकड़ वैसे भी प्रसिद्ध है। फिर तो ये लीला–माधुरी, रूप–माधुरी, मुरली–माधुरी की स्फूर्ति–लहरियों में डूबते–उतरते उच्चस्वर मे श्रीकृष्णनाम–गुणलीला का गान करते हुए वृन्दावन आ पहुँचे।

श्रीवृन्दावन मे आते ही वृन्दावनविहारी श्रीश्यामसुन्दर इनसे दूर न रह सके। उनकी मधुर मृदुल मुरली–ध्वनि इन्हें स्पष्ट सुनाई देने लगी। उस ध्वनि के सुनते ही इनके दोनों नेत्र फिर खुल गये। मुरली–ध्वनि–रसधारा कानों में घुसी, उधर रूप–माधुरी छवि के कारण आँखों की अश्रुधारा व्रजधरणी को अभिषिक्त करने लगी। अनेक भाव–तरंगों के बीच श्रीप्रिया–प्रीतम की रासलीला–रस राशि में सराबोर होकर इनकी दिव्यवाणी से 'श्रीकृष्णकर्णामृत' रूपी स्वर–लहरी तरंगायित हो उठी। प्रथम ही जो स्वर निकला, वह था 'चिन्तामणिर्जयति'—जिसकी कृपा से इस सौभाग्य सम्पत्ति पथ को मैंने प्राप्त किया है, मेरी भक्तिपथ प्रदर्शक गुरुस्वरूपा श्रीचिन्तामणिजी की जय हो।

उस दिन जब इन्होंने अपने नेत्र सुईयों से फोड़े थे, चिन्तामणि की आँखों से भी रक्त–अश्रुओं की धारा बह निकली थी। उसने अनुभव किया था कि बिल्वमंगल के साथ अवश्य कुछ प्रेममयी घटना घटी है। उसके हृदय में इनकी प्रेमोन्मत्त अवस्था देखने की ललक जागरूक हो उठी थी। जानती थी कि ये वृन्दावन को छोड़कर अब और कहीं जाने के नहीं। वह भी श्रीयुगलकिशोर के चारु चरणों में हृदय की डोर जोड़, वीणा–बजाती, प्रेमगान गाती–नाचती वृन्दावन आ पहुँची।

ढूँढ़ती–ढूँढ़ती उस समय इनके निकट आ पहुँची, जब इनके हाथ में श्रीश्यामसुन्दर का दिया खीर–प्रसाद का दोना था और इनके मुख से यह स्वर मुखरित हुआ 'चिन्तामणिर्जयति'। नेत्र खोले तो चिन्तामणि सामने थी। उठ खड़े हुए विकल होकर और स्वागत कर आसन दिया। प्रसादी क्षीर का दोना आगे बढ़ाया इन्होंने। उसने

पूछा–'यह कहाँ से पाया आपने ?' इन्होंने कहा–श्रीश्यामसुन्दर स्वयं नित्य मुझे एक ऐसा प्रसादी दोना कृपाकर दे जाते हैं।' 'तो फिर मैं आपसे इसे क्यों ले लूँ। हाँ मुझे भी जब श्रीश्यामसुन्दर कृपाकर अपने हाथ से देंगे, तभी लूँगी'–चिन्तामणि ने कहा। श्रीबिल्वमंगलजी कैसे प्रसाद पाते, घर आये अतिथि, फिर परमार्थ–पथ के गुरु को छोड़कर। दोनों भूखे बैठे रहे। दोनों की प्रेमनिष्ठा देखकर श्रीश्यामसुन्दर रीझ गये और खीर का एक और दोना लेकर सामने उपस्थित हुए। चिन्तामणि के हाथ में उसे मुसकराते हुए दिया। अनूठी और अति रहस्यभरी मुसकान थी यह। श्रीश्यामसुन्दर आज अकेले नहीं आये। चिन्तामणि विद्यमान थी, श्रीप्रियाजी कुछ अन्यथा जानकर रूठ न जायें, अतः आप श्रीराधाजी को अपने साथ लाये। उन्हींके हाथ से खीर का दोना दिलवाया। इस श्रीरासविलासिनी अनुपम जोड़ी को देखकर दोनों कृतार्थ हो गये। श्रीवृन्दावन के सुखपुंज कुंजों में श्रीप्रिया–प्रीतम की नित्य निकुंज–लीलाओं का मधुर गान करते हुए नित्य–लीला में प्रविष्ट हो गये। इनकी विद्यमानता का काल सन् १२५० से १३५० के बीच माना जाता है।

पूर्व जन्म का वृत्तान्त–

चिन्तामणि पहले जन्म में एक राजा की लाड़िली कन्या थी, और बिल्वमंगलजी एक दण्डी सन्यासी। दैवयोग से राजकुमारी की छोटी उम्र में मृत्यु हो गई। राजा अति शोकातुर हो गये। प्राचीन प्रथा और कन्या के मोहवश राजा ने हीरे–मणियों से जटित अनेक सोने के आभूषणों सहित उसके मृतक शरीर को पृथ्वी में गड़वा दिया। वह दण्डी सन्यासी यह सब देख रहा था। वह अनेक दिन से रुपया–पैसा की जुगाड़ में था क्योंकि उसने सन्यासियों का एक विशाल भण्डारा करने का संकल्प कर रखा था। उसे राजा के मोह और मूर्खता पर हँसी आई कि यह इतने कीमती वस्त्र–आभूषण मृतक–शरीर के किस काम आयेंगे ? गरीबों या सन्यासियों की सेवा में लगा देता तो कितना अच्छा होता ?

राजकुमारी को गाड़कर सब चले गये। रात का अन्धेरा छा गया। दण्डी संन्यासी वहाँ पहुँचा और धीरे-धीरे उस समाधि को खोदने लगा। अभी आभूषणों को हाथ नहीं लगा पाया था कि समाधि से आवाज आई-'यह क्या कर रहे हो ?' संन्यासी के आधे प्राण तो निकल गये, दूर हटकर खड़ा हुआ। 'क्या करोगे इन आभूषणों को ? उस आवाज ने पूछा। संन्यासी ने धीरे से कहा-'संन्यासियों के भण्डारे के लिए मुझे धन की आवश्यकता है। उसमें लगा दूँगा इन्हें।' फिर आवाज आई-'मुझे तो शान्ति से सोने दो। मेरे पिता राजा के पास चले जाओ और उससे कहो, कि राजकुमारी के पलंग के सिर के दो पायों के नीचे सोने की दो ईंटें गढ़ी हैं, उन्हें मुझे साधु-सेवा के लिए दे दो।

संन्यासी समाधि को पहले की तरह ढक-ढका कर दूसरे दिन प्रातःकाल राजा के पास पहुँचा। राजा ने जब पायों के नीचे खुदवाया तो सचमुच सिरहाने की तरफ दो सोने के ईंटें निकलीं। राजा ने उन्हें संन्यासी को दे दिया। उसने उन्हें बेचा और भण्डारे का आयोजन किया। उसने झड़ा-भण्डारा किया, सोचा बहुत बड़ा धन का जखीरा मेरे पास है। भण्डारा हुआ किन्तु अनुमान से अधिक संन्यासी पहुँचे। माल सामग्री अधिक लगी। वह धन तो खर्च हो गया किन्तु बाजार का बहुत कर्जा सिरपर हो गया।

राजकुमारी की समाधि पर पहुँचा और समाधि खोदकर सब आभूषण-वस्त्र उतार लिए, नंगा कर दिया उसके शरीर को। समाधि ढककर जब वह चलने लगा, तो पीछे से आवाज आई-'ठहरो ! इसका दण्ड तुम्हें भोगना होगा।' संन्यासी ने पूछा-'किसका ? आवाज ने कहा, 'संन्यासी होकर नग्न स्त्री को देखने का।' अगले जन्म में ब्राह्मण के घर उत्पन्न होकर भी नीचतम शूद्र से भी अधिक पतित होगे तुम अपनी दूषित-वृत्तियों के कारण। 'ऐसा अन्याय क्यों ? मैंने तो साधु-सेवा के लिए यह सब किया है'-काँपते हुए संन्यासी ने कहा। आवाज आई-'साधु-सेवा का फल बाद में किन्तु पहले पाप का दण्ड भोगना होगा।' संन्यासी ने पूछा-'वह कैसे' ?

'वह ऐसे कि मैं वेश्या बनूँगी और तुम मेरे बनोगे प्रेमी। अनेक दिन तक..............।' 'सन्यासी ने बात काटकर कहा–'हाय ! तुम क्यो वेश्या बनोगी, तुमने क्या पाप किया ? गंगाजल की भाँति पवित्र, कुंवारी राजकन्या हो तुम।' आवाज ने गम्भीर होकर कहा–'भगवद्भक्ति से शून्य केवल अपनी यश–प्रतिष्ठा के लिए भण्डारा करने वाले तुम भ्रष्ट सन्यासी के दर्शन–स्पर्श से मुझे भी दण्ड भोगना होगा।'

दण्डी सन्यासी जड़वत् चुप खड़ा रहा और उसका शरीर कॉंपने लगा। फिर आवाज आई, दण्डी ! दुःखी मत होओ। श्रीभगवान् की कृपा से मेरे द्वारा तुम्हारा उद्धार होगा और तुम्हारे हाथों मेरा, किन्तु अभी वह समय दूर है। जाती हूँ मैं, फिर मिलेंगे।' इतना कहकर आवाज बन्द हो गई। दण्डी लौट आये अपने आश्रम में।

वही राजकुमारी है चिन्तामणि और वही दण्डी संन्यासी हैं लीलाशुक श्रीबिल्वमंगल दिव्यरसमय श्रीकृष्णकर्णामृत के कृष्णप्रेमोन्मत्त गायक।

सृष्टि–विनायक परात्पर श्रीभगवान् जहाँ भक्तों के विनोद के लिए असंख्य–अनन्त लीलाएं करते हैं, वहाँ जीव के प्रति करुणा के विकास के लिए ऐसी–ऐसी विलक्षण, मन–बुद्धि अगोचर लीलाऐं करते हैं कि जिनसे अनेक शिक्षाऐं उपलब्ध होती हैं। वस्तुतः लोक–शिक्षामयी लीलाओं मे वे प्रायः अपने परिकरों, साधन–सिद्ध भक्तों को पात्र बनाते हैं। धर्मराज युधिष्ठिर की जुआ मे प्रवृत्ति, जुआ के दुष्परिणाम जगत् के सामने लाने की लीला है। वैकुण्ठ मे आत्माराम सनकादिकों द्वारा नित्य–पार्षदों को शाप का नाटक, पापाचार, अन्याय, दुराचरण के नाश, तथा साधुगण–परित्राण की ओर ध्यान आकर्षित करता है। इसी प्रकार सन्त श्रीतुलसीदास जी तथा श्रीबिल्वमंगल जी का जीवन–वृत्त भी विषयासक्ति की दुर्दशाओं को दिखाते हुए भगवद् भजन द्वारा जीवन की या जीव के स्वरूप की उज्ज्वल उपलब्धि की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है। अनेक सद्शिक्षाओं एव श्रेष्ठतम आदर्शों के जीते–जागते चित्र हैं ये भक्त–चरित्र।

लीलाशुक श्रीबिल्वमंगल आचार्य मखोद्गीर्ण

श्रीकृष्णकर्णामृतम्

चिन्तामणिर्जयति सोमगिरिर्गुरुर्मे, शिक्षागुरुश्च भगवान् शिखिपिच्छमौलिः।
यत्पादकल्पतरु-पल्लवशेखरेषु लीला-स्वयंवररसं लभते जयश्रीः।।१।।

भक्तिपथ में प्रवेश करानेवाली श्रीचिन्तामणि तथा शिक्षागुरु श्रीसोमगिरि की जय हो तथा शिक्षागुरु भगवान् मोरपुच्छधारी श्रीकृष्ण की जय हो, जिनके युगलचरणरूप कल्पतरु के पल्लव-समान अँगुलियों के अग्रभाग-स्थित नखचन्द्रों की शोभा में आकृष्ट होकर जय-श्रीरूपा श्रीराधिकाजी लीलावश स्वयंवररस या सेवा-सुख को प्राप्त करती हैं।।१।।

अस्ति स्वस्तरुणी-कराग्रविगलत्कल्पप्रसूनाप्लुतं,
वस्तु प्रस्तुत-वेणुनाद-लहरी-निर्वाण निर्व्याकुलम्।
स्रस्तस्रस्तनिरुद्ध-नीविविलसद्गोपीसहस्रावृतं।
हस्तन्यस्त-नतापवर्गमखिलोदारं किशोराकृति।।२।।

स्वर्ग की नवयुवतियो के हाथों के अग्रभाग से वर्षित कल्पतरु के पुष्पों से जो आच्छादित हो रही हैं, वेणुनादलहरी के मादक माधुर्यानन्द में जो झूम रही हैं, नीवी-बन्धन जिनके स्खलित हुए जा रहे हैं ऐसी सहस्र-सहस्र व्रजगोपियों के द्वारा जो परिवेष्टित हैं, जिनके हाथ में शरणागतों के लिए मुक्ति न्यस्त है, और जो समस्त जनों के प्रति अति उदार है, ऐसी एक किशोरमूर्ति (श्रीकृष्ण) श्रीवृन्दावन में नित्य विराजमान है।।२।।

चातुर्यैक-निदान-सीमचपलापांगच्छटा-मन्थरं,
लावण्यामृत-वीचि-लोलितदृशं, लक्ष्मी-कटाक्षादृतम्।
कालिन्दी-पुलिनांगणप्रणयिनं कामावतारांकुरं,
बालं नीलममी वयं मधुरिमस्वाराज्यमाराध्नुमः।।३।।

जिनकी असीम चतुराई तथा चपलता की निदान स्वरूप कटाक्षभंगी की छटा में व्रजसुन्दरियों की गति मन्थर हो जाती है, लावण्यामृत की तरंग–मालाओं से जिनकी दृष्टि चंचल हो रही है, श्रीलक्ष्मी जिनका कटाक्षों द्वारा आदर करती है, जिन्हें कालिन्दी–पुलिन प्रांगण अति प्रिय है, जिनसे निखिल कामावतारों का अंकुर उद्भव होता है, तथा जो मधुरिमा की सम्राट् मूर्ति हैं, उन नीलमणि किशोर–विग्रह श्रीकृष्ण की हम आराधना करते हैं।।३।।

बर्होत्तंस-विलास-कुन्तलभरं माधुर्य-मग्नाननं,
प्रोन्मीलन्नव-यौवनं प्रविलसद्वेणु-प्रणादामृतम्।
आपीन-स्तन-कुट्मलाभिरभितो गोपीभिराराधितं,
ज्योतिश्चेतसि नश्चकास्तु जगतामेकाभिरामाद्भुतम्।।४।।

जिनके मस्तक पर केशकलाप अति मनोहर चूड़ा के रूप में बँधा हुआ है और उस पर मोरपुच्छ सुशोभित है, जिनका मुखकमल माधुर्य–प्रवाह में निमग्न है, जो वर्द्धमान नवयौवन से उन्मीलित हो रहे हैं, जो वेणु में अमृतप्रवाह सदृश स्वरालाप प्रवेश करा रहे हैं, एवं जो चारों ओर से उन्नत कुचकोरक–विशिष्टा गोपीवृन्द से आराधित हो रहे हैं, ऐसे एकमात्र लोकाभिराम अद्भुत ज्योतिःपुंज श्रीकृष्ण हमारे चित्त में प्रकाशित हों।।४।।

मधुरतरस्मितामृतविमुग्धमुखाम्बुरुहं, मदशिखिपिच्छलांछितमनोज्ञकचप्रचयम्।
विषयविषामिषग्रसनगृध्नुनि चेतसि मे, विपुलविलोचनं किमपि धाम चकास्तु चिरम्।।५।।

जिनके मुखकमल से क्षुरित होनेवाला मधुरतर अमृततुल्य हास्य–मकरन्द सबके मन को विमुग्ध कर रहा है, जिनका मनोहर केशकलाप मतवाले मोर के पंखों से सुशोभित हो रहा है, जिनके अति विशाल लोचन हैं, ऐसे एक अपूर्व ज्योतिपुंज स्वरूप श्रीकृष्ण मेरे

विषयरूप विष एवं मांस–ग्रास के लोलुप चित्त में चिर काल पर्यन्त प्रकाशित हों।।५।।

मुकुलायमान नयनाम्बुजं विभोर्मुरलीनिनादमकरन्द निर्भरम्।
मुकुरायमाणमृदुगण्डमण्डलं, मुखपंकजं मनसि मे विजृम्भताम्।।६।।

मेरे मन में विभु–श्रीकृष्ण का वह मुखकमल प्रकाशित हो, जिसमें युगलनयन मुकलित कमल के सदृश अर्धनिमीलित हो रहे हैं, जो मुरली की मधुरध्वनि के मकरन्द से परिपूर्ण हो रहा है एवं जिसपर मृदु युगल कपोल दर्पण की भाँति सुशोभित हो रहे हैं।।६।।

कमनीय किशोरमुग्धमूर्तेः कलवेणुक्वणितादृताननेन्दोः।
मम वाचि विजृम्भतां मुरारेर्मधुरिम्णःकणिकापि कापि कापि।।७।।

जिनकी कमनीय किशोरमूर्ति सबको मुग्ध करने–वाली है, मन्द–मुरली ध्वनि से जिनका मुखचन्द्र समाराधित हो रहा है उन श्रीकृष्णमुरारि की मधुरिमा का कुछ–कुछ कणिका ही मेरी जिह्वापर स्फुरित हो उठे–यही मेरी प्रार्थना है।।७।।

मदशिखण्डिशिखण्डविभूषणं, मदनमन्थरमुग्धमुखाम्बुजम्।
व्रजवधूनयनांजनरंजितं विजयतां मम वाङ्मयजीवितम्।।८।।

जिन्होंने मत्त मयूर के पुच्छ का विभूषण (मुकुट) धारण कर रखा है, जिनके मुखकमल को देखकर कामदेव भी मुग्ध हो जाता है, तथा जो व्रजगोपियों के नेत्रांजन से रंजित हो रहे हैं, मेरी वाणी के जीवनस्वरूप वे श्रीश्यामसुन्दर सदा जययुक्त हों।।८।।

पल्लवारुणपाणिपंकज संगिवेणुरवाकुलं,
फुल्लपाटलपाटली परिवादिपादसरोरुहम्।
उल्लसन्मधुराधरद्युतिमंजरीसरसाननं,
बल्लवीकुचकुम्भकुंकुमपंकिलं प्रभुमाश्रये।।९।।

जो नवीन पल्लवों के सदृश अरुणवर्ण के करकमलों में वेणु धारणकर स्वयं ही उसकी मधुरध्वनि मे विमुग्ध हो रहे हैं, जिनके चरणकमलों की लालिमा शोभा प्रफुल्लित पाटलीपुष्प (गुलाब) को

पराभूत करने वाली है, जिनके सरस मुखकमलपर उल्लसित अधर–कान्ति मधुर–मजरी के समान शोभित है, एवं जिनका श्रीअग व्रजसुन्दरियों के कुचकुम्भ–लिप्त कुकुम से चर्चित हो रहा है, उन प्रभु श्रीकृष्ण का मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ।।६।।

अपांगरेखाभिरभंगुराभिरनंगरेखारसरंजिताभिः।
अनुक्षणं बल्लवसुन्दरीभिरभ्यस्यमानं विभुमाश्रयामः।।१०।।

व्रजसुन्दरीवृन्द प्रतिपल अनंग रेखा–रस रंजित नेत्र–प्रान्तों की अविच्छिन्न दृष्टिधारा द्वारा जिनका माधुर्य आस्वादन करती रहती हैं, उन विभु–श्रीकृष्ण का मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ।।१०।।

हृदये मम हृद्यविभ्रमाणां हृदयं हर्षविशाललोलनेत्रम्।
तरुणं व्रजबालसुन्दरीणां तरलं किंचन धाम संनिधत्ताम्।।११।।

मनोज्ञ हाव–भावशालिनी व्रजसुन्दरियों के जो जीवनाधार–स्वरूप हैं, उन्ही व्रजसुन्दरियों के हर्षविलास में जिनके नेत्रयुगल–चंचल हो रहे हैं, व्रजसुन्दरियों के कण्ठहार की मध्यवर्ति मणितुल्य वे नवकिशोर अनिर्वचनीय ज्योतिपुंज–श्रीकृष्ण मेरे हृदय में विहार करें।।११।।

निखिलभुवनलक्ष्मीनित्यलीलास्पदाभ्यां कमलविपिनवीथीगर्वसर्वंकषाभ्याम्।
प्रणमदभयदानप्रौढिगाढादृताभ्यां किमपि वहतु चेतः कृष्णपादाम्बुजाभ्याम्।।१२

श्रीकृष्ण के जो पादपद्म निखिल–भुवन–लक्ष्मी के नित्य–विलासास्पद हैं, जो कमलों की राशि–राशि की शोभा के गर्व को खर्व करनेवाले हैं, तथा जो प्रणतजनों को आश्रय प्रदान करने में प्रगाढ़ शक्तिशाली होने से सर्वत्र समादृत हैं, उन श्रीकृष्ण–पादपद्मों में मेरा चित्त किसी अनिर्वचनीय आनन्द को प्राप्त करे।।१२।।

प्रणयपरिणताभ्यां श्रीभरालम्बनाभ्यां प्रतिपदललिताभ्यां प्रत्यहं नूतनाभ्याम्।
प्रतिमुहुरधिकाभ्यां प्रस्फुरल्लोचनाभ्यां प्रवहतु हृदये नः प्राणनाथः किशोरः।।१३

प्रतिपद पर जो ललित शोभायुक्त हैं जो नित्यनवीन हैं, प्रतिक्षण ही जो अधिकाधिक सुखवर्द्धनशील हैं, वे हमारे प्राणनाथ किशोर शोभा के परमाश्रय, प्रणय से परिपूर्ण प्रफुल्लित नेत्रयुगल से हमारे हृदय में विहार करें।।१३।।

माधुर्यवारिधिमदाम्बुतरंगभंगी शृंगारसंकुलितशीतकिशोरवेषम्।
आनन्दहासललिताननचन्द्रबिम्बमानन्दसंप्लवमनुप्लवतां मनो मे।।१४।।

मदजल से तरंगायित, शृंगाररसराशि, किशोर स्वरूप परमशीतल माधुर्यसागर मन्दहासपूर्ण ललित मुखचन्द्र प्रतिबिम्बित होने के कारण जो आनन्दातिरेक से उच्छलित हो रहा है, वह (माधुर्यसागर) आनन्दप्रवाह मेरे मन को सदा के लिए आप्लावित करता रहे।।१४।।

अव्याजमंजुलमुखाम्बुजमुग्धभावैरास्वाद्यमाननिजवेणुविनोदनादम्।
आक्रीडतामरुणपादसरोरुहाभ्यामार्द्रे मदीयहृदये भुवनार्द्रमोजः।।१५।।

प्रसाधनरहित मंजुल मुखकमल पर आविर्भूत होनेवाले भावों के साथ जो अपने वेणुनाद के आनन्द का आस्वादन करते हैं, वे त्रिभुवन को आनन्द से अनुप्लावित कर देने वाले ज्योतिपुंज श्रीकृष्ण अपने अरुण चरणारविन्द से मेरे रसाभिषिक्त हृदय में निरन्तर क्रीड़ा करें।।१५।।

मणिनूपुरवाचालं वन्दे तच्चरणं विभोः।
ललितानि यदीयानि लक्ष्माणि व्रजवीथिषु।।१६।।

व्रज–वीथियों में जिन चरणों के मनोहर चिह्न अंकित हो रहे हैं, मणिनुपुरों की ध्वनि से मुखरित विभु–श्रीकृष्ण के उन चरणों की मैं वन्दना करता हूँ।।१६।।

मम चेतसि स्फुरतु वल्लवी-विभोर्मणिनूपुरप्रणयि-मंजु-शिंजितम्।
कमलावनेचरकलिन्दकन्यकाकलहंसकण्ठकलकूजितादृतम्।।१७।।

कालिन्दी के कमलवन में विचरनेवाले कलहंसों की कण्ठध्वनि से भी सुमधुर, गोपीवल्लभ श्रीकृष्ण के चरणकमलों के मणिमय नूपुरों की मनोहर ध्वनि मेरे चित्त में स्फुरित हो।।१७।।

तरुणारुणकरुणामय विपुलायतनयनं कमलाकुचकलशीभरविपुलीकृतपुलकम्।
मुरलीरवतरलीकृतमुनिमानसनलिनं मम खेलतु मदचेतसि मधुराधरममृतम्।।१८

जिनके नेत्रयुगल तरुण, अरुणवर्ण तथा करुणामय हैं, अति विशाल विस्तारयुक्त हैं, कमलाकुचकलसों के स्पर्श से जिनके अंग

पुलकित हो रहे हैं, जिनकी मुरली–ध्वनि को सुनकर मुनियों के मन भी नलनियों की भाँति चंचल हो जाते हैं, उनका मधुर अधरामृत मेरे मदमत्त चित्त में क्रीड़ा–विहार करे।।१८।।

आमुग्धमर्धनयनाम्बुजचुम्ब्यमान हर्षाकुलव्रजवधूमधुराननेन्दोः।
आरब्धवेणुरवमात्तकिशोरमूर्त्तेराविर्भवन्तु मम चेतसि केऽपि भावाः।।१९।।

जो सम्यक्‌रूप से मुग्ध होकर अधखुले नेत्रों से आनन्दाकुला व्रजसुन्दरियों के मधुर मुखचन्द्र का चुम्बन कर रहे हैं, और वेणु वादन के आरम्भ करते ही जो किशोरमूर्ति प्रकाशित करते हैं, उन्हीं श्रीकृष्ण के अनिर्वचनीय भाव समूह मेरे चित्त में आविर्भूत हों।।१९।।

कलक्वणितकंकणं करनिरुद्धपीताम्बरं
क्लमप्रसृतकुन्तलं गलितबर्हभूषं विभोः।
पुनः प्रकृतिचापलं प्रणयिनी भुजायन्त्रितं
मम स्फुरतु मानसे मदनकेलिशय्योत्थितम्।।२०।।

कंकणों की मधुरध्वनि से मुखरित हाथों से श्रीराधाजी पीताम्बर को खींचकर श्रीकृष्ण को जाने से रोक रही हैं, विलासक्लान्ति के कारण उनके केशकलाप बिथुर रहे हैं, श्रीमाधव के मोरपुच्छ तथा भूषण स्खलित हो रहे हैं, फिर भी स्वभाव–चापल्य के कारण प्रेयसी श्रीराधाजी के भुजबन्धनों में जो आबद्ध है, उन विभु–श्रीकृष्ण की मदनकेलिमय शय्योत्थानलीला मेरे मन में स्फुरित हो।।२०।।

स्तोकस्तोकनिरुध्यमानमृदुल-प्रस्यन्दिमन्दस्मितं
प्रेमोद्भेदनिरर्गल प्रसृमरप्रव्यक्तरोमोद्गमम्।
श्रोतुं श्रोत्रमनोहरं व्रजवधूलीलामिथोजल्पितं
मिथ्यास्वापमुपास्महे भगवतः क्रीड़ानिमीलद्दृशः।।२१।।

श्रीराधादि व्रजसुन्दरियों के मनोमुग्धकारी परस्पर कर्णरसायन रूप गुप्त कथनोपकथन को सुनने इच्छा से कपटपूर्वक नेत्र बन्द कर भगवान् श्रीकृष्ण जो निद्रा कर रहे है, मैं उस कपट–निद्रा की उपासना करता हूँ, जिसमें वे मृदुमंद मुसकराहट को यत्नपूर्वक

धीरे–धीरे रोक रहे हैं, किन्तु प्रेमाविर्भाव होने के कारण विस्तृत पुलकावली को वे शमन नहीं कर पा रहे।।२१।।

विचित्रपत्रांकुरशालि वालास्तनान्तरं याम वनान्तरं वा।
अपास्य वृन्दावनपादलास्यमुपास्यमन्यं न विलोकयामृ।।२२।।

विचित्र पत्रांकुरशाली (पत्रावलीयुक्त) गोप–सुन्दरियो के स्तनद्वय जिनके हृदय में वर्तमान हैं अथवा जो उनके स्तनद्वय के मध्य वर्तमान हैं, उन श्रीकृष्ण को छोड़कर मैं और किसका अन्वेषण करूँ ? अथवा विविध पत्रांकुरों से सुशोभित किसी और वन में क्यों जाऊँ ?–श्रीकृष्ण के पद–विन्यास से विभूषित श्रीवृन्दावन को छोड़कर और किसी उपास्य का सन्धान कहीं नहीं देखता हूँ।।२२।।

सार्द्ध समृद्धैरमृतायमानै रातायमानैर्मुरलीनिनादैः।
मूर्धाभिषिक्तं मधुराकृतीनां बालं कदा नाम विलोकयिष्ये।।२३।।

स्वर–गानादि का अपूर्व विस्तार करने वाली, अमृत मे परिपूर्ण स्वर–लहरियों से समावृत उस मुरलीधारी श्रीबालकृष्ण का मैं अपने नेत्रों से कब दर्शन करूँगा ? जो मधुराकृतियों में सर्व शिरोमणि हैं।।२३।।

शिशिरीकुरुते कदा नु नः शिखिपिच्छाभरणः शिशुर्दृशोः।
युगलं विगलन्मधुद्रव स्मितमुद्रामृदुना मुखेन्दुना।।२४।।

मृदु मुसकान के कारण अति मधुर कान्तिवाले अपने मुखचन्द्र से माधुर्य धारारूप उज्ज्वल ज्योत्स्ना को बिखेरनेवाला और मोरपुच्छ के आभरणों से विभूषित श्यामलवर्ण श्रीबालकृष्ण कब हमारे नेत्रयुगल को शीतल करेगा।।२४।।

कारुण्यकर्बुरकटाक्षनिरीक्षणेन, तारुण्यसंवलितशैशववैभवेन।
आपुष्णता भुवनमद्भुतविभ्रमेण, श्रीकृष्णचन्द्र शिशिरीकुरु लोचनं मे।।२५।।

कारुण्यपूर्ण विचित्र कटाक्षदृष्टि, तारुण्ययुक्त कैशोर मिश्रित बाल्य–वैभव की अद्भुत भाव भंगीसमूह द्वारा निखिल भुवनों को तृप्त करने वाले श्रीकृष्णचन्द्र मेरे नेत्रों को शीतल करें।।२५।।

कदा वा कालिन्दीकुवलयदलश्यामतरला:
कटाक्षा लक्ष्यन्ते किमपि करुणावीचिनिचिता:।
कदा वा कन्दर्पप्रतिभटजटाचन्द्रशिशिरा:
कमप्यन्तस्तोषं दधति मुरलीकेलिनिनदा:।।२६।।

कालिन्दी के नीलकमलों के सदृश श्यामवर्ण तथा चपल–करुणा–लहरियों से व्याप्त आपके कटाक्षों को मैं कब देखूँगा? कामदेव के वैरी महादेव की जटा स्थित गंगा के शीतल जल के सदृश मुरली की ध्वनिकेलि मेरे चित्त में कब एक अनिर्वचनीय सन्तोष विधान करेगी?।।२६।।

अधीरमालोकितमार्द्र जल्पितं, गतं च गम्भीरविलासमन्थरम्।
अमन्दमालिंगितमाकुलोन्मद, स्मितं च ते नाथ विदन्ति गोपिका:।।२७।।

हे नाथ! आपकी अधीर चितवन, रसमयी बोलिन, गम्भीर विलासपूर्ण चलन, गाढ़ आलिंगन, आकुलता तथा उन्मादक मुसक्यान का केवल व्रजसुन्दरिवृन्द ही अनुभव (दर्शन) करती हैं।।२७।।

अस्तोकस्मितभरमायतायताक्षं नि:शेषस्तनमृदितं व्रजांगनाभि:।
नि:सीमस्तवकितनीलकान्तिधारं दृश्यासं त्रिभुवनसुन्दरं महस्ते।।२८।।

हे त्रिभुवन–सुन्दर! आपकी मृदुहास्य, विशाल नेत्रयुगल एवं व्रजसुन्दरियों के स्तन द्वारा प्रगाढ़ आलिंगित तथा असीम प्रफुल्लित नीलकान्तिधारा प्रवाही ज्योतिर्मय आपके श्रीविग्रह का मैं कब दर्शन करूँगा?।।२८।।

मयि प्रसादं मधुरै: कटाक्षै वंशीनिनादानुचरैर्विधेहि।
त्वयि प्रसन्ने किमिहापरैर्न स्त्वय्यप्रसन्ने किमिहापरैर्न:।।२९।।

वंशी–निनाद के सहचर मधुर कटाक्षों द्वारा, हे कृष्ण! मेरे ऊपर दया कीजिए। आपके प्रसन्न होने पर अन्यान्य की अप्रसन्नता में भी मेरी कोई क्षति नहीं है। आपकी अप्रसन्नता में औरों की प्रसन्नता से मेरा क्या प्रयोजन?।।२९।।

हे देव ! हे दयासिन्धो ! मैं मस्तकपर अंजलि बाँध कर अतिशय दीनतापूर्वक मुक्तकण्ठ से यही प्रार्थना करता हूँ कि, आप अपने करुणाभरे कटाक्षलेश से मुझे एकबार अभिषिक्त कीजिए।।३०।।

पिच्छावतंस रचनोचितकेशपाश-पीनस्तनीनयनपंकजपूजनीये।
चन्द्रारविन्दविजयोद्यतवक्त्रबिम्बे चापल्यमेति नयनं तव शैशवेन।।३१।।

जिनके रचनोचित केशकलाप मोरपुच्छ से सुशोभित हैं, जो पीनस्तनी व्रजगोपिकाओं के नेत्रकमलों द्वारा पूजित होते हैं, जिनकी श्रीमुखचन्द्र कान्ति कमल की शोभा को पराभूत करने वाली है, हे कृष्ण ! ऐसी आपकी किशोर-वयस मेरे नेत्रों को चंचल कर रही है।।३१।।

त्वच्छैशवं त्रिभुवनाद्भूतमित्यवेहि मच्चापलं च मम वा तव वाधिगम्यम्।
तत् किं करोमि विरलं मुरलीविलासि मुग्धं मुखाम्बुजमुदीक्षितुमीक्षणाभ्याम्।।३२

हे श्रीकृष्ण ! आपकी कैशोर अवस्था तथा मेरी चपलता दोनो ही त्रिभुवन में अद्भुत हैं, यह आप जानते हो, और मैं भी जानता हूँ। अब आप ही बताइये कि आपके अतुलनीय मुरली-विलासी मुखकमल को एक बार नयन भरकर देखने के लिए मैं क्या उपाय करूँ ?।।३२।।

पर्याचितामृतरसानि पदार्थभंगीवल्गूनि वल्गितविशालविलोचनानि।
बाल्याधिकानि मदवल्लवभाविनीभिभवि लूठन्ति सुकृतां तव जल्पितानि।।३३

अमृतरसधारा से ओत-प्रोत तथा पदार्थ-भंगिमा के कारण आपकी वचन-कुशलता बाल सम्भाषणों से भी अधिक मनोमुग्धकारी है। विशाल लोचना असंख्य व्रजसुन्दरियों के साथ आपका कैशोर-रंजित वार्तालाप किन्हीं पुण्यवान भावविभूषित व्यक्तियों के चित्त में ही स्फुरित हुआ करता है।।३३।।

पुनः प्रसन्नेन्दुमुखेन तेजसा, पुरोऽवतीर्णस्य कृपामहाम्बुधेः।
तदेव लीलामुरलीरवामृतं समाधिविघ्नाय कदा नु मे भवेत्।।३४।।

कृपा महासागर श्रीकृष्ण कब पुनः मेरे सामने आविर्भूत होंगे ? और चन्द्रसमान प्रफुल्लित कान्तिमय मुख से रासलीला हित मुरली-ध्वनि सुधा प्रवाह के द्वारा कब मेरी समाधि में विघ्न उत्पादन करेंगे ?।।३४।।

बालेन मुग्धचपलेन विलोकितेन मन्मानसे किमपि चापलमुद्वहन्तम्।
लोलेन लोचनरसायनमीक्षणेन लीलाकिशोरमुपगूहितुमुत्सुकाः स्म।।३५।।

जिन्होंने किशोर–मुग्ध अपनी चचल दृष्टि द्वारा मेरे चित्त में अनिर्वचनीय चचलता उत्पन्न की थी, अब उन्ही लोचन–जीवनधन लीला–किशोर को सतृष्ण नेत्र–दृष्टि से आलिंगन करने के लिए मैं उत्कण्ठित हो रहा हूँ।।३५।।

अधीर-बिम्बाधर-विभ्रमेण, हर्षाद्रवेणुस्वर-सम्पदा च।
क्षनेक केनापि मनोहरेण, हा हन्त हा हन्त मनो दुनोषि।।३६।।

हे अधीर ! आपकी चंचल बिम्बाधरों के हावभाव सौन्दर्य को कौन जान सकता है ? आनन्द से द्रवीभूत वेणु की स्वर–लहरियों के मनोहर विलास द्वारा हाय ! हाय !! मेरे मनको तुम सन्तप्त कर रहे हो।।३६।।

यावन्न मे निखिलमर्मदृढाभिघातं निःसंधिबन्धनमुपैति न कोऽपि तापः।
तावद्विभो भवतु तावकवक्त्रचन्द्र चन्द्रातपद्विगुणिता मम चित्तधारा।।३७।।

हे विभो ! जब तक कोई अनिर्वचनीय ताप मेरे समस्त मर्मस्थलों को कड़ी चोटों से घायल कर चूर–चूर नहीं कर देता, तब तक मेरी चित–संवेदना आपके मुखरूपी चन्द्रातप से दुगुनी शीतलता लाभ करती रहे।।३७।।

यावन्न मे नरदशा दशमी कुतोऽपि रन्ध्रादुपैति तिमिरीकृतसर्वभावाः।
लावण्यकेलिसदनं तव तावदेव लक्ष्यासमुत्क्वणितवेणु मुखेन्दुबिम्बम्।।३८।।

हे मुरली–मनोहर ! जब तक नरशरीर की दसवी–दशा अर्थात् मृत्यु कोई छिद्र पाकर मेरे समस्त अस्तित्व को अन्धकार में लीन करती हुई मुझे प्राप्त नहीं होती, तब तक समस्त लावण्यकेलिसदन वेणु वादनकारी आपका मुखचन्द्र मैं देखता रहूँ।।३८।।

आलोललोचनविलोकितकेलिधारा–नीराजिताग्रचरणैः करुणाम्बुराशेः।
आर्द्राणि वेणुनिनदैः प्रतिनादपूरैराकर्णयामि मणिनूपुरशिंजितानि।।३९।।

अहो ! करुणासागर श्रीकृष्ण स्वरलहरियों से पूरित वेणुध्वनि

की ताल पर नृत्य कर रहे हैं और चरणों के आगे चंचल दृष्टि निक्षेप कर रहे हैं। उनके मणिनूपुरों की मधुर–ध्वनि की झंकार मुझे सुनाई दे रही है।।३९।।

हे देव ! हे दयित ! हे भुवनैकबन्धो !
हे कृष्ण हे चपल हे करुणैकसिन्धो !
हे नाथ ! हे रमण ! हे नयनाभिराम !
हा हा कदानु भवितासि पदं दृशोर्मे।।४०।।

हे देव ! हे प्रियतम ! हे त्रिभुवन के एकमात्र बन्धो ! हे कृष्ण ! हे चपल ! हे करुणासिन्धो ! हे नाथ ! हे रमण ! हे नयनाभिराम ! अहो ! आप कब मेरे नेत्रगोचर होंगे ?–कब मैं आपके दर्शन करूँगा ?।।४०।।

अमून्यधन्यानि दिनान्तराणि हरे ! त्वदालोकनमन्तरेण।
अनाथबन्धो ! करुणैकसिन्धो ! हा हन्त ! हा हन्त ! कथं नयामि।।४१।।

हाय ! हाय !! हे हरे ! हे अनाथबन्धो ! हे करुणैकसिन्धो ! आपके दर्शन–बिना इन दुर्भागे दिनों को मैं कैसे व्यतीत करूँ ?।।४१।।

किमिह कृणुमः कस्य ब्रूमः कृतं कृतमाशया
कथयतः कथामन्यां धन्यामहो हृदयेशयः।
मधुरमधुरस्मेराकारे मनोनयनोत्सवे
कृपणकृपणा कृष्णे तृष्णा चिरं बत लम्बते।।४२।।

अब क्या करूँ मैं ? किसको कहूँ ? दर्शन की वृथा आशा लगाये रखने का क्या प्रयोजन ? कोई और अच्छी बात चलाओ। अहो ! किन्तु जो मेरे हृदय में समाये हुए हैं उनकी वार्ता कैसे मैं त्याग सकता हूँ ? मधुर–मधुर मन्दमुसक्यान–भरी, मन–नेत्रों की उत्सव स्वरूप उस श्रीकृष्णमूर्ति को देखने के लिए मेरी तृष्णा तो प्रतिक्षण बढ़ती ही जा रही है।।४२।।

आभ्यां विलोचनाभ्यामम्बुरुहविलोचनं बालम्।
द्वाभ्यामपि परिरब्धुं दूरे मम हन्त दैवसामग्री।।४३।।

हाय ! हाय !! श्रीकृष्ण के आलिंगन करने का दिव्य–सौभाग्य तो दूसरी बात है। मैं अपने नेत्रों द्वारा उन पद्मलोचन किशोर के दर्शन भी तो नहीं पा रहा हूँ।।४३।।

अश्रान्त-स्मितमरुणाधरोष्ठं हर्षार्द्रद्विगुणमनोज्ञ वेणुगीतम्।
विभ्राम्यद्विपुलविलोचनार्धमुग्धं वीक्षिष्ये तव वननाम्बुजं कदा नु।।४४।।

हे कृष्ण ! निरन्तर मन्द मुसकान से उज्ज्वल अरुण अधर–ओष्ठ, उल्लास से सिंचित द्विगुण मनोहर वेणुगीत, हावभाव–सौन्दर्यभरे अर्धनिमीलित विशाल नेत्रयुगल के कटाक्षों द्वारा मनोहर आपका मुखकमल मैं कब देख पाऊँगा।।४४।।

लीलायताभ्यां रसशीतलाभ्यां, नीलारुणाभ्यां-नयनाम्बुजाभ्याम्।
आलोकयेदद्भुत-विभ्रमाभ्यां, काले कदा कारुणिकः किशोरः।।४५।।

करुणासिन्धु किशोर–श्रीकृष्ण अपने अद्भुत हावभाव भरे प्रफुल्लित तथा रस से शीतलता प्राप्त श्याम–अरुण नयनारविन्दों से कब मुझे देखेंगे।।४५।।

बहलचिकुरभारं बद्धपिच्छावतंसं चपलचपलनेत्रं चारुबिम्बाधरोष्ठम्।
मधुरमृदुलहासं मन्दरोदारलीलं मृगयति नयनं मे मुग्धवेषं मुरारेः।।४६।।

जिनके सम्बद्ध केश कलापमय चूड़ा पर मोरपुच्छ–मुकुट सुशोभित है, चपल–चंचल नेत्रयुगल तथा मनोहर बिम्बाधर ओष्ठ हैं जिनके, मधुर–मधुर मन्द मुसक्यानयुक्त उदार लीला (सर्व रस–प्रदायिनी) लीला करने वाले हैं, ऐसे मुग्ध वेषधारी उन श्रीमुरारि को मेरे नेत्र खोज रहे हैं।।४६।।

बहलजलदच्छायाचौरं विलासभरालसं
मदशिखि-शिखा-नीलोत्तंसं मनोज्ञमुखाम्बुजम्।
किमपि कमलापांगोदग्र-प्रसंगजडं जग-
न्मधुरिम-परीपाकोद्रेकं वयं मृगयामहे।।४७।।

जिनके रूप ने सघन–घन के सौन्दर्य को चुरा लिया है, जो विलास के श्रम से अलसाये हुए हैं, जिनका मनोहर मुखकमल

मत्तमयूर की चंचल चन्द्रिकाओं से विभूषित है, जो कमला (श्रीकिशोरी जी) के कटाक्षों का प्रसंग पाकर अनिर्वचनीय जड़ता प्राप्त करते हैं, अखिल विश्व माधुर्य के मूर्त्तविग्रह उन श्रीकृष्ण को हम ढूढ रहे हैं।।४७।।

परामृश्यं दूरे पथि पथि मुनीनां व्रजवधू-
दृशादृश्यं शश्वत् त्रिभुवनमनोहारि-वदनम्।
अनामृश्यं वाचामनिशमुदयानामपि कदा
दरी दृश्ये देवं दरदलितनीलोत्पलरुचिम्।।४८।।

विविध मुनियों के उपासना-मार्ग जिनके मार्ग के निकट की बजाय दूर ले जाने वाले हैं, एकमात्र व्रजगोपियों की दृष्टि (भावमयी उपासना) से जो दृष्टिगोचर होते हैं, वेद-वाणी भी जिनका विवेचन नहीं कर पाती, उन त्रिभुवन मनोहारी मुखवाले तथा ईषद् विकसित नीलकमल-कान्तिधारी श्रीकृष्णदेव को मैं निरन्तर बार-बार निहारूँगा?।।४८।।

लीलाननाम्बुजमधीरमुदीक्षमाणं नर्माणि वेणुविवरेषु निवेशयन्तम्।
दोलायमाननयनं नयनाभिरामं देवं कदा नु दयितं व्यतिलोकयिष्ये।।४९।।

जिनका मुखकमल हाव-भाव मकरन्द से परिपूर्ण है, जिनकी चितवन अति चंचल है, जो वेणु के विवरों में मधुर-भावमय परिहास के स्वर संचार करते हैं, उन चंचल-नयन नयनाभिराम प्राणप्रियतम श्रीकृष्ण को मैं कब देखूँगा।।४९।।

लग्नं मुहुर्मनसि लंपटसंप्रदाय लेखावलेहिनि रसज्ञमनोज्ञवेषम्।
रज्यन्मृदुस्मितमृदूल्लसिताधरांशु राकेन्दुलालितमुखेन्दु मुकुन्दबाल्यम्।।५०।।

जिनकी अधरकान्ति अनुरागमयी मधुर मन्द-मुसकान से उल्लसित हो रही है, जिनका मुखचन्द्र पूर्णिमा चन्द्र की किरणों के लावण्य से लालित है, उन श्रीकृष्ण का रसज्ञ-मनोहर छटायुक्त बालपन लम्पट-सम्प्रदाय की रसशैली का आस्वादन करने वाले मेरे मन में गड़ गया है।।५०।।

अहिमकर-करनिकर-मृदुमुदितलक्ष्मी सरस-तर-सरसिरुहसदृशदृशि देवे।
व्रजयुवतिरतिकलह विजयिनिजलीला मदमुदितवदनशशिमधुरिमणि लीये।।५१

सूर्य की किरणों से ईषद्-विकसित सरोवरोत्पन्न कमल के समान अति सरस जिनके नेत्रयुगल हैं, जो व्रजयुवतियों के साथ रतिकलह मे विजयी हुए हैं, अतः अपनी लीला के गर्व से जिनका मुखचन्द्र आनन्द मधुरिमा मे मुग्ध हो रहा है, वही लीलाविहारी श्रीकृष्ण मेरे मन में बस गये हैं।।५१।।

करकमलदलकलित-ललित-तरवंशी कलनिनदगलदमृतघनसरसि देवे।
सहजरसभरभरितदरहसितवीथी सततवहदधरमणिमधुरिमणि लीये।।५२

जो कमलदल के समान अपने हाथ मे वंशी लेकर अति ललित मधुर ध्वनि कर रहे हैं, और उससे अमृत का एक गम्भीर सरोवर निर्माण कर दिया है, एवं सहज रसभरी मृदु मुसकान से जिनके अधर निरन्तर रंजित रहते हैं, उन श्रीकृष्णदेव की माधुरी मे मेरा मन लीन हो रहा है।।५२।।

कुसुमशरशर-समरकुपितमदगोपी कुचकलसघुसृणरसलसदुरसि देवे।
मदमुदितमृदुहसितमुषितशशिशोभा मुहरधिकमुखकमलमधुरिमणि लीये।।५३

जिनका वक्षस्थल मनोज-शरो के आघात से कुपित हुई उन्मत्त व्रजगोपियों के उन्नत उरोज-कलशो के संघर्षण से रस (कुंकुम) रंजित हो रहा है, शशि-शोभा को तिरस्कृत करनेवाली मद-मुदित अधिकाधिक वर्धनशील मन्दहास्य के माधुर्यमय मुखकमल वाले उन श्रीकृष्णदेव में मेरा मन निमग्न हो रहा है।।५३।।

आनम्रामसितभ्रुवोरुपचितामक्षीणपक्ष्मांकुरे-
ष्वालोलामनुरागिणीनयनयोरार्द्रां मृदौ जल्पिते।
आताम्रामधरामृते मदकलामम्लानवंशीस्वरे-
ष्वाशास्ते मम लोचनं व्रजशिशोमूर्तिं जगन्मोहिनीम्।।५४।।

जो बॉकी एव काली-काली भ्रुकुटियो से सुशोभित नेत्रोंपर सुन्दर पलको युक्त हैं, जो अनुरागियों के नयनो के आनन्द स्वरूप हैं

तथा मधुर–भाषी हैं, जिनके लाल–लाल अधरों पर मादक कलाओंवाली उज्ज्वल वंशी की मधुर–ध्वनि हो रही है ऐसे व्रजकुमार की जगमोहिनी मूर्ति का मुझे दर्शन होगा, मेरे नयनों को ऐसा दृढ़ विश्वास है।।५४।।

तत्कैशोर तच्च वक्त्रारविन्दं तत्कारुण्यं ते च लीलाकटाक्षाः।
तत्सौन्दर्यं सा च सान्द्रस्मितश्रीः सत्यं सत्यं दुर्लभ दैवतेऽपि।।५५।।

आप जैसा वह किशोर–रूप, वैसा ही मुखारविन्द वैसी ही करुणाभरे आपके लीलामय कटाक्ष और वैसी मन्द मुसकान शोभा (जो मुझे आपने दिखाई थी) सत्य है, परम सत्य है, कि वे सब देवताओं के लिये भी दुर्लभ है।।५५।।

विश्वोपप्लवशमनैकबद्धदीक्षं विश्वासस्तवकितचेतसां जनानाम्।
प्रश्यामप्रतिनवकान्तिकन्दलार्द्रं पश्यामः पथि पथि शैशवं मुरारेः।।५६।।

विश्व के उपद्रव तथा विश्वस्त चित्तवाले भक्तजनों के दुःख दूर करने के लिए जो दृढ़ प्रतिज्ञ है, उस श्रीकृष्ण मुरारि के अतिशय श्याम शैशव–वैभव को जो प्रतिक्षण नवीन कान्ति के प्रस्फुटन से तरलायित हो रहा है, मैं हर निकुंज वन–वीथी मे सर्वत्र देख रहा हूँ।।५६।।

मौलिश्चन्द्रकभूषणो मरकतस्तम्भाभिरामं वपु-
र्वक्त्रं चित्रविमुग्धहासमधुरं बाले विलोले दृशौ।
वाचः शैशवशीतला मदगजश्लाघ्या विलासस्थिति-
र्मन्दं मन्दमये क एष मथुरावीथीं मिथो गाहते।।५७।।

मयूरपिच्छ से विभूषित मस्तक, मरकतमणि स्तम्भ के समान मनोहर वपु, विचित्र एवं विमुग्ध मुस्कराहट भरा मुखारविन्द, अति चपल नेत्रयुगल, बाल माधुरी–सिंचित बोलनि मतवारे हाथी से भी अधिक प्रशंसित विलासमयी चाल वाला–यह कौन है जो व्रज की वीथियों में अपनी जोड़ी के साथ चला जा रहा है ?।।५७।।

पादौ वादविनिर्जिताम्बुजवनौ पद्मालयालम्बितौ
पाणी वेणुविनोदनप्रणयिनौ पर्याप्तशिल्पश्रियौ।
बाहू दोहदभाजनं मृगदृशां माधुर्यधाराकिरौ
वक्त्रं वाग्विषयातिलंघनमहो बालं किमेतन्महः।।५८।।

इसके चरणयुगल ने पद्मवन के गर्व को खर्व कर दिया है, इसलिए पद्मालया–श्रीलक्ष्मी ने इसकी शरण ग्रहण कर ली है, इसके कर–कमल वेणुविनोदन के प्रेमी हैं एव समस्त शिल्पकला के आश्रय है, इसकी भुजाऐं माधुर्यधारा वर्षण कर मृगनयनियो की आकाँक्षा को पूर्ण करने वाली हैं, इसके मुखचन्द्र का सौन्दर्य तो वाणी के अगोचर है, कहो ! यह तेजोमय–किशोर कौन है ?।।५८।।

एतन्नाम विभूषणं बहुमतं वेषाय शेषैरलं
वक्त्रं द्वित्रिविशेषकान्तिलहरी विन्यासधन्याधरम्।
शिल्पैरल्पधियामगम्यविभवैः शृंगारभंगीमयं
चित्रं चित्रमहो विचित्रमहहो चित्रं विचित्रं महः।।५९।।

श्रीकृष्ण की मूर्ति ही सर्वजन सम्मत–विभूषण स्वरूप है, फिर अन्य वेषभूषा का क्या प्रयोजन ? दो तीन कान्ति–लहरियों के विन्यास द्वारा अधर शोभा से उनका श्रीमुख यथेष्ट विभूषित हो रहा है, अल्प बुद्धि–शिल्प ज्ञानियों के तो वह अगम्य है, यह वैभव शृंगार भंगीमय ज्योति–पुज स्वरूप चमत्कारी अति विचित्र है।।५९।।

अग्रे समग्रयति कामपि केलिलक्ष्मीमन्यासु दिक्ष्वपि विलोचनमेव साक्षि।
हा हन्त ! हस्तपथदूरमहो किमेतदाशाकिशोरमयमम्ब जगत्त्रयं मे।।६०।।

मेरे सामने श्रीकृष्ण की कैसी आश्चर्यजनक शोभाराशि प्रकाशित हो रही है। समस्त दिशाएँ ही उसी रूप से सुशोभित हो रही हैं–इस बात के साक्षी हैं मेरे नेत्र। हाय ! हाय !! हाथ फैलाने पर मुझसे ये एक हाथ दूर रहते हैं ! ओ माँ ! यह क्या हुआ ? तीनों लोकों में मैं सर्वत्र किशोरमय देख रहा हूँ।।६०।।

चिकुरं बहलं विरलं भ्रमरं मृदुलं वचनं विपुलं नयनम्।
अधरं मधुरं वचनं मधुरं चपलं चरितं च कदानु विभोः।।६१।।

विभु–कृष्ण के स्निग्ध घने केश (कब मैं बाँध दूँगा ?) भ्रमर के भाँति मस्तकपर लटकती अलकावली (कब मै सवार दूँगा?) मृदुल–मधुरवचन (कब मैं सुनूँगा?), विशाल नयन–युगल (कब मैं देखूँगा?), मधुर अधर–सुधा (कब मैं आस्वादन करूँगा?), मृदुल वदन

(कब मैं चूमूँगा?), एवं चपल चरित कब मेरे अनुभव–गोचर होंगे ?।।६१।।

परिपालय नः कृपालत्त्यसकृज्जल्पितमार्तबान्धवः।
मुरलीमृदुलस्वनान्तरे, विभुराकर्णयिता कदानु नः।।६२।।

हे कृपामय ! एकबार दर्शन देकर हमारी रक्षा कीजिए, हे आर्त्तबन्धो ! मैंने अनेक वाक्यों का प्रलाप किया है, उनमें से यही एक प्रलाप आपकी मुरली के मृदुल स्वर में मैं कब सुनूँगा ?।।६२।।

कदा नु कस्यां नु विपद्दशायां कैशोरगन्धिः करुणाम्बुधिर्नः।
विलोचनाभ्यां विपुलायताभ्यामालोकयिष्यन्विषयीकरोति।।६३।।

हे करुणासागर नवकिशोर ! इस दशा से भी अधिक किस विपद्–दशा में विशाल नेत्रों से देखकर आप हमारे दृष्टिगोचर होवोगे ?।।६३।।

मधुरमधुरबिम्बे मंजुलं मन्दहासे शिशिरममृतनादे शीतलं दृष्टिपाते।
विपुलमरुणनेत्रे विश्रुतं वेणुनादे मरकतमणिनीलं बालमालोकये नु।।६४।।

जिनके अधरबिम्बों में मधुरता है, मन्द मुस्कान में मनोहरता है, जिनके अमृतमय वेणुनाद में शिशिरता (ठण्डक) है, दृष्टिपात में शीतलता है, जिनके नेत्र विशाल एवं लालिमायुक्त हैं, जिनका वेणुवादन विख्यात है, उन मरकतमणिवत् नीलवर्ण नवकिशोर श्रीकृष्ण के दर्शन मुझे कब प्राप्त होंगे ?।।६४।।

माधुर्यादपि मधुरं मन्मथतातस्य किमपि कैशोरम्।
चापल्यादपि चपलं चेतो बत हरति हन्त किं कुर्मः।।६५।।

मन्मथोत्पादक श्रीकृष्ण का कोई अनिर्वचनीय कैशोर–माधुर्य ही अतिशय मधुर है–अथवा उनके कैशोर में ही मधुर मन्मथोत्पादकता धर्म है, उसी कैशोर ने ही मेरे महाचपल चित्त को हरण कर लिया है, हाय ! अब मैं क्या कर सकता हूँ ?।।६५।।

वक्षःस्थले च विपुलं नयनोत्पले च मन्दस्मिते च मृदुलं मदजल्पिते च।
बिम्बाधरे च मधुरं मुरलीरवे च बालं विलासनिधिमाकलये कदा नु।।६६।।

जिनके वक्षस्थल तथा नयनकमल विशाल हैं, मन्दहास्य मधुर

तथा बोलनि मदभरी है, बिम्बाधर एवं मुरलीरव मधुर है, उन विलासनिधि–श्रीकृष्ण किशोर के मैं कब दर्शन करूँगा ?।।६६।।

आर्द्रावलोकितधुरा परिणद्धनेत्रमाविष्कृतस्मितसुधामधुराधरोष्ठम्।
आद्यं पुमांसमवतंसितबर्हिबर्हमालोकयन्ति कृतिनः कृतपुण्यपुंजाः।।६७।।

जिनके नयन अतिशय प्रणय के कारण आर्द्र हो रहे हैं, मन्दहास्य सुधा के क्षुरित होने से जिनके अधरोष्ठ मधुर हैं, उन मोरमुकुट विभूषित आदि पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण का महापुण्यवान् सुकृति व्यक्ति ही दर्शन करते हैं।।६७।।

मारः स्वयं नु मधुरद्युतिमण्डलं नु माधुर्यमेव नु मनोनयनामृतं नु।
वेणीमृजो नु मम जीवितवल्लभो नु बालोऽयमभ्युदयते मम लोचनाय।।६८।।

यह क्या स्वयं–कन्दर्प है ? या मधुर द्युतिमण्डल है ? मूर्तिमान माधुर्य है क्या यह ? या मन–नयनों का अमृत–जीवन है ? क्या यह मेरी वेणी के मोचनकारी हैं ? या मेरे जीवनवल्लभ किशोर–कृष्ण हैं, जो मेरे नेत्रों के सामने प्रकाशित हो रहे हैं।।६८।।

बालोऽयमालोलविलोचनेन वक्त्रेणचित्रीकृतदिङ्मुखेन।
वेषेण घोषोचितभूषणेन, मुग्धेन दुग्धे नयनोत्सवं नः।।६९।।

ये किशोर–कृष्ण अपने चंचल नयनों द्वारा, सर्वदिशाओं में शोभावर्द्धनशील श्रीमुख द्वारा, व्रज के योग्य वन्यवेश एवं भूषणों द्वारा हमारे नयनों को आनन्द–परिपूरित कर रहे हैं।।६९।।

आन्दोलिताग्रभुजमाकुललोलनेत्रमार्द्रस्मितार्द्रवदनाम्बुजचन्द्रबिम्बम्।
शिंजानभूषणचितं शिखिपिच्छमौलि शीतं विलोचनरसायनमभ्युपैति।।७०

जिनकी भुजाओं के अग्रभाग (हाथ) आन्दोलित हो रहे हैं, करुणा से जिनके नेत्र क्षुब्ध एवं चचल हो रहे हैं, सरस मृदुमुस्कान से जिनका मुखकमल चन्द्रद्युतिवत् स्निग्ध है, जो झंकार युक्त नूपुरादि भूषणों से अलंकृत हो रहे हैं, वे मोरमुकुटधारी लोचन–रसायन किशोर–कृष्ण मेरे निकट आ रहे हैं।।७०।।

पशुपालबालपरिषद्विभूषणः शिशुरेष शीतलविलोललोचनः।
मृदुलस्मितार्द्रवदनेन्दुसंपदामदयन्मदीयहृदयं विगाहते।।७१।।

सब गोपकुमारों की सभा का विभूषण—स्वरूप एवं शीतल चचल नयनों वाला यह किशोर—कृष्ण अपनी मधुर—मन्द मुसकानमय मुखचन्द्र की लावण्य शोभा से मुझको उन्मत्त कर मेरे हृदय में प्रवेश किये जा रहा है।।७१।।

किमिदमधरवीथीक्लृप्तवंशीनिनादं किरति नयनयो र्नः कामपि प्रेमधाराम्।
तदिदममरवीथी वल्लभं दुर्लभं नस्त्रिभुवनकमनीयं दैवितं जीवितं च।।७२।।

अधर परवंशी धारणकर उसकी ध्वनि से मेरे नयनों के सम्मुख आश्चर्यरूपमयी प्रेमधारा जो बरसा रहा है, यह कौन है ? अहा ! यह तो त्रिभुवनसुन्दर, देवताओं के लिए भी दुर्लभ, मेरा भाग्य—विधाता, मेरा प्रियतम, मेरा जीवन—प्राण है।।७२।।

तदिदमुपनतं तमालनीलं, तरलविलोचनतारकाभिरामम्।
मुदितमुदितवक्त्रचन्द्रबिम्बं मुखरितवेणुविलासि जीवितं मे।।७३।।

तमालवृक्ष के समान श्यामवर्ण, चचल—नेत्र पुतलियों के कारण अत्यन्त सुन्दर, पूर्णचन्द्र के सदृश परम प्रसन्न—वदन, मधुर—मुरली बजाता हुआ मेरा जीवन—वल्लभ ही मेरे निकट आ गया है।।७३।।

चापल्यसीम चपलानुभवैकसीम चातुर्यसीम चतुराननशिल्पसीम।
सौरभ्यसीम सकलाद्भुतकेलिसीम सौभाग्यसीम तदिदं व्रजभाग्यसीम।।७४।।

अहो ! ये श्रीकृष्ण चापल्य की सीमा हैं, ब्रजांगनाओं की अनुभूति की पराकाष्ठा हैं, चातुर्य एवं चतुरानन (ब्रह्मा) की कारीगरी की भी पराकाष्ठा हैं, सौरभ तथा समस्त अद्भुत केलिविलास की सीमा हैं ब्रजसुन्दरियों के एवं समग्र ब्रज के सौभाग्यों की सीमा हैं।।७४।।

माधुर्येण द्विगुणशिशिरं वक्त्रचन्द्रं वहन्ती
वंशीवीथीविगलदमृतस्रोतसा सेचयन्ती।
मद्वाणीनां विहरणपदं मत्तसौभाग्यभाजां
मत्पुण्यानां परिणतिरहो नेत्रयोः संनिधत्ते।।७५।।

माधुर्य के कारण जिसका मुखचन्द्र दुगुना शीतल हो रहा है, वंशी–पथ से अभिद्रवित अमृतधारा से मेरी वाणी की विहारस्थलि को जो अभिषिक्त कर रही है, अहो ! मेरे पुण्यों की परिणतिस्वरूप यह श्रीमूर्ति मेरे नेत्रों के पास आ गयी है।।७५।।

तेजसेऽस्तु नमो धेनुपालिने लोकपालिने।
राधापयोधरोत्संगशायिने शेषशायिने।।७६।।

इस तेजपुंज को नमस्कार, धेनुपालक को मेरा नमस्कार, लोक–पालक को नमस्कार, श्रीराधा–पयोधरमध्य शयनकारी को नमस्कार एवं शेषशायी को मेरा नमस्कार है।।७६।।

धेनुपालदयितास्तनस्थली धन्यकुंकुमसनाथकान्तये।
वेणुगीतगतिमूलवेधसे ब्रह्मराशिमहसे नमो नमः।।७७।।

गोपसुन्दरियों के स्तनमण्डल–चर्चित धन्य–कुकुम द्वारा जो अति प्रफुल्लित कान्तिशाली हैं एवं वेणुगीत की स्वरलहरियों के सृष्टिकर्त्ता तथा ब्रह्मराशि के जो मूल विधाता हैं, उन तेजपुंज श्रीकृष्ण को मैं बार–बार नमस्कार करता हूँ।।७७।।

मृदुक्वणन्नूपुरमन्थरेण बालेन पादाम्बुजपल्लवेन।
अनुक्वणन्मंजुलवेणुगीत मायाति मे जीवितमात्तकेलि।।७८।।

मेरा जीवनस्वरूप श्रीकृष्ण कोमलपद–पद्मपल्लवों द्वारा मधुर–मधुर नूपुर ध्वनि करता हुआ, मन्थर गति से विलास पूर्वक मधुर वेणुगीत को बजाते हुए सामने चला आ रहा है।।७८।।

सोऽयंविलासमुरलीनिनदामृतेन सिंचन्नुदंचितमिदं मम कर्णयुग्मम्।
आयाति मे नयनबन्धुरनन्यबन्धोरानन्दकन्दलितकेलिकटाक्षलक्ष्मीः।।७९।।

श्रीकृष्ण अपनी विलासभरी सुरीली–मुरली–ध्वनि–सुधा से मेरे श्रवण–उत्सुक कानों को सींच रहे हैं। उनको छोड़कर मेरा और कोई बन्धु नही है, आनन्द भरे केलिकटाक्षों के साथ मेरे नयनों के तारे वे आ रहे हैं।।७९।।

दूराद्विलोकयति वारणकेलिगामी धाराकटाक्षभरितेन विलोकितेन।
आरादुपैति हृदयंगमवेणुनाद वेणीमुखेन दशनांशुभरेण देवः।।८०।।

हाथी की भाँति मतवाली गतिवाला, दूर से ही कटाक्षपूर्ण दृष्टि द्वारा मुझे देखता हुआ और मनोहर वेणुनादलहरी छेड़ता हुआ, हर्षपूर्वक मधुर मुसकराते समय मुखवाला श्रीकृष्ण मेरे निकट आ रहा है।।८०।।

त्रिभुवनसरसाभ्यां दिव्यलीलाकुलाभ्यां
दिशि दिशि तरलाभ्यां दीप्तभूषादराभ्याम्।
अशरणशरणाभ्यामद्भुताभ्यां पदाभ्याम-
यमयमनुकूजद्वेणुरायाति देवः।।८१।।

त्रिभुवन को रस में निमग्न करने वाले दिव्य लीलाओं से दिशा–दिशा में नृत्यपूर्ण चंचल–गति से दीप्त नूपुरादि भूषणों की ध्वनि द्वारा, अशरणों के शरणस्वरूप अद्भुत युगल–चरणों द्वारा श्रीकृष्णदेव वंशी बजाते हुए आ रहे हैं।।८१।।

सोऽयं मुनीन्द्रजनमानसतापहारी सोऽयं मदव्रजवधूवसनापहारी।
सोऽयं तृतीयभुवनेश्वरदर्पहारी सोऽयं मदीयहृदयाम्बुरुहापहारी।।८२।।

मुनीन्द्रजन का मानसतापहारी वह यही है, मदगर्विता व्रजगोपियो के चीरों का चोर यही है, तीनों स्वर्ग के ईश्वर इन्द्र का दर्पहारी गिरिधारी यही है। यह वही श्रीकृष्ण है, जिसने मेरे हृदय कमल का हरण कर लिया है।।८२।।

सर्वज्ञत्वे च मौग्ध्ये च सार्वभौममिदं महः।
निर्विशन्नयनं हन्त निर्वाणपदमश्नुते।।८३।।

अहो ! सर्वज्ञता एव मुग्धता का यह कैसा सार्वभौम तेजपुंज, जिसने मेरे नयनों में प्रवेशकर परमानन्दरूप में निवृत्ति को, प्राप्त कर लिया है, अर्थात् परम शान्त हो गया है।।८३।।

पुष्णानमेतत्पुनरुक्तशोभामुष्णेतरांशोरुदयान्मुखेन्दोः।
तृष्णाम्बुराशिं द्विगुणीकरोति कृष्णाह्वयं किंचन जीवितं मे।।८४।।

जो अपने मुखचन्द्र से चन्द्र की क्षीण होनेवाली व्यर्थ शोभा को पुनः अधिक पुष्टकर मेरे तृष्णासागर को दुगुना उच्छलित कर रहा है, वही श्रीकृष्णनामधारी ही मेरा जीवन–स्वरूप है।।८४।।

तदेतदाताम्रविलोचनश्रीः संभाविताशेषविनम्रगर्वम्।
मुहुर्मुरारेर्मधुराधरोष्ठं मुखाम्बुजं चुम्बति मानसं मे।।८५।।

ईषत् लालिमा–लिए लोचनद्वय की शोभा–सम्पत्ति द्वारा अतिशय विनम्र भक्तों के गौरव को जो बढ़ाने वाले हैं, उन श्रीकृष्णमुरारि के मधुर अधरों से सुशोभित मुखकमल को मेरा मन बार–बार चुम्बन कर रहा है।।८५।।

करौ शरदिजाम्बुजक्रमविलासशिक्षागुरु
पदौ विबुधपादपप्रथमपल्लवोल्लंघिनौ।
दृशौ दलितदुर्मदत्रिभुवनोपमानश्रियौ
विलोकय विलोचनामृतमहो महः शैशवम्।।८६।।

देखो तो इस किशोर कृष्ण की तेजोराशि मेरे नयनों की अमृतस्वरूपा है, इसके करकमलद्वय शरत्कालीन कमल प्रफुल्लता की शोभा के शिक्षा–गुरु हैं, इसके चरणयुगल ने तो कल्पद्रुम के प्रथम पल्लव की शोभा को निरस्त कर दिया है, इसके नयनयुगल ने त्रिभुवन की उपमा के आश्रयभूत मीन–कमलादि का गर्व चूर–चूर कर दिया है।।८६।।

आचिन्वानमहन्यहन्यहनि साकारानुविहारक्रमा
नारुन्धानमरुन्धतीहृदयमप्यार्द्रस्मितार्द्रश्रिया।
आतन्वानमनन्यजन्मनयन–श्लाध्यामनर्घ्यां दशा
मानन्दं व्रजसुन्दरीस्तनतटी साम्राज्यमुज्जृम्भते।।८७।।

जो व्रजसुन्दरियों के स्तन–परिवेशपर एक छत्र साम्राज्य प्राप्त कर प्रतिदिन साक्षात् विहार–मूर्तिमान होकर नित्य नवीन विहार करते हैं, जो अपनी मन्द मुसकान की सरस शोभा से अरुन्धती के हृदय को भी अनुरक्त करते हैं, जो अन्य किसी जन्म में प्राप्त नहीं हो

सकती ऐसी व्रजजन्मलब्धा व्रजसुन्दरियों के नयनों को परम श्लाघ्य अनुपम आनन्द दशा प्राप्त करा रहे हैं, वही आनन्द–स्वरूप श्रीकृष्ण मेरे चित्त मे आविर्भूत हो रहे हैं।।८७।।

तदुच्छ्वसितयौवनं तरलशैशवालंकृतं
मदच्छुरितलोचनं मदनमुग्धहासामृतम्।
प्रतिक्षणविलोभनं प्रणयपीतवंशीमुखं
जगत्त्रयमनोहरं जयति मामकं जीवितम्।।८८।।

जो प्रस्फुटित यौवन एवं कैशोर–सौन्दर्य से अलंकृत हो रहे हैं, मदमत्त लोचन हैं जिनके, जिनका लोभनीय हास्यामृत प्रतिक्षण मदन को मुग्ध कर रहा है, प्रेमभरी–वंशी–जिनके मुखपर सुशोभित है, उन त्रिभुवन–मनहारी मेरे जीवन–धन श्रीकृष्ण की जय हो।।८८।।

चित्रं तदेतच्चरणारविन्दं चित्रं तदेतन्नयनारविन्दम्।
चित्रं तदेतद्वदनारविन्दं चित्रं तदेतद्वपुरस्य चित्रम्।।८९।।

श्रीकृष्ण के चरणारविन्द विचित्र हैं, नयनारविन्द भी विचित्र हैं, वदनारविन्द तो और भी विचित्र हैं, उनका सारा श्रीविग्रह ही विचित्र, परम विचित्र है।।८९।।

अखिलभुवनैकभूषणमधिभूषित जलधिदुहितृकुचकुंभम्।
व्रजयुवतिहारवल्ली मरकत नायकमहामणिं वन्दे।।९०।।

जो निखिल–भुवन के भूषणों के एकमात्र भूषण हैं, जो श्रीलक्ष्मी के कुचकलशों के अलंकार हैं, व्रजसुन्दरियों के कण्ठहार के जो महामरकत मणिमय सुमेरु हैं, उन्हीं श्रीकृष्ण की मैं वन्दना करता हूँ।।९०।।

कान्ताकचग्रहणविग्रहलब्धलक्ष्मी खण्डांगरागलवरंजितमंजुलश्रीः।
गण्डस्थलीमुकुरमण्डलखेलमानधर्मांकुरः किमपि गुम्फति कृष्णदेवः।।९१।।

श्रीराधाजी के केशग्रहणरूप प्रणय–कलह में जो सौन्दर्य–निधि युक्त हो रहे हैं, एवं छूटे हुए अंगराग से रंजित होनेपर जिनकी अति मंजुल मनोज्ञता छलक रही है, कपोलरूपी दर्पणमण्डल पर जिनके

स्वेद–विन्दु उदित हो रहे हैं, वे श्रीकृष्णदेव मानो एक अपूर्व माला का गुंथन कर रहे हैं।।६१।।

मधुरं मधुरं वपुरस्य विभोर्मधुरं मधुरं वदनं मधुरम्।
मधुगन्धि मृदुस्मितमेतदहो मधुरं मधुरं मधुरं मधुरम्।।६२।।

अहो ! इस विभु–श्रीकृष्ण का वपु अति मधुर है, उसमें भी इनका मुख और भी अधिक मधुर है, उसकी मृदु–सुगन्धि तथा मन्द मुस्कान उससे भी अधिक सुमधुर है, अतिशय मधुरतम है।।६२।।

शृंगाररससर्वस्वं शिखिपिच्छविभूषणम्।
अंगीकृतनराकारमाश्रये भुवनाश्रयम्।।६३।।

शृंगाररस ही जिनकी सर्वसम्पत्ति है, मोरमुकुट ही जिनका विशेष भूषण है, उन नराकृति अंगीकार करने वाले त्रिभुवन–आश्रय श्रीकृष्ण की मैं शरण ग्रहण करता हूँ।।६३।।

नाद्यापि पश्यति कदापि निदर्शनाय
चित्ते तथोपनिषदां सुदृशां सहस्रम्।
स त्वं चिरान्नयनयोरनयोः पदव्यां
स्वामिन् कदा नु कृपया मम संनिधत्से।।६४।।

हे नाथ ! सहस्र–सहस्र सूक्ष्म–दृष्टि वाले उपनिषत् आपकी जिस माधुर्यमयी शृंगाररसराजमूर्ति का आज तक चित्त में निर्णय नहीं कर पाये, उसका साक्षात् दर्शन इन नेत्रों से मैं आपकी किस अहैतुकी कृपा से प्राप्त कर रहा हूँ ?।।६४।

केयं कान्तिः केशव त्वन्मुखेन्दोः कोऽयं वेषः कापि वाचामभूमिः।
सेयं सोऽयं स्वादतामंजलिस्ते भूयो भूयो भूयशस्त्वां नमामि।।६५।।

हे केशव ! आपके मुखचन्द्र की क्या अपूर्व कान्ति है ! और आपका वेशवैभव ही कितना अद्भुत है !–यह सब वाणी के अगोचर हैं। इनका तो आप ही आस्वादन कीजिए, मैं केवल हाथ जोड़कर आपको बार–बार नमस्कार ही करता हूँ ?।।६५।।

वदनेन्दुविनिर्जितः शशी दशधा देवपदं प्रपद्य ते।
अधिकां श्रियमश्नुतेतरां तव कारुण्य-विजृम्भितं कियत्।।६६।।

आपके मुखचन्द्र से पराजित होकर चन्द्रमा अपने को खण्डों में विभक्त कर आपके चरणों की शरण में (दश नखचन्द्रों के रूप में) प्रपन्न हुआ है, इसलिए अधिकतम सौन्दर्य प्राप्त कर रहा है, अहो ! आपकी करुणा का विलास कितना विस्तृत है ?।।६६।।

तत्त्वन्मुखं कथमिवाम्बुज-तुल्यकक्षं वाचामवाचि ननुपर्वणी पर्वणीन्दोः।
तत् किं ब्रुवे किमपरं भुवनैककान्त वेणुत्वदाननमनेन समं नु यत्स्यात्।।६७।।

(रात्रि को मुरझा जाने वाला) कमल आपके नित्य विकसित मुखकमल के समकक्ष कैसे हो सकता है ? कलंकित दोषाकर चन्द्र आपके मुखचन्द्र की समता कैसे कर सकता है ? हे भुवनैककान्त ! आपके वेणु–बजाते श्रीमुख के साथ जिसकी उपमा दूँ, ऐसी और कौनसी वस्तु है ?।।६७।।

शुश्रूषसे शृणु यदि प्रणिधानपूर्वं पूर्वैरपूर्व-कविभिर्न कटाक्षितं यत्।
नीराजनक्रमधुरां भवदाननेन्दोर्निर्व्याजमर्हति चिराय शशिप्रदीपः।।६८।।

पूर्वकालीन अपूर्व कविगण की भी जिस पर दृष्टि नहीं गयी, उस बात को यदि आप सुनना चाहते हो तो सुनो। इस चन्द्र ने कर्पूर–प्रदीपरूप से आपके मुखचन्द्र की चिरकाल निष्कपटरूप से आरती उतारने की योग्यता प्राप्त की है।।६८।।

अखण्ड-निर्वाण-रसप्रवाहैर्विखण्डिताशेषरसान्तराणि।
अयन्त्रितोद्वान्तसुधार्णवानि जयन्ति शीतानि तव स्मितानि।।६९।।

जिस अखण्ड परमानन्द रसप्रवाह ने अन्य समस्त रसों के गर्व को चूर–चूर कर दिया है, उस अनर्गल रससुधासिन्धु की उद्भवकारी आपकी अतिशय शीतल मुसकानों की जय हो।।६९।।

कामं सन्तु सहस्रशः कतिपये सारस्यधौरेयकाः
कामं वा कमनीयता परिमलस्वाराज्यबद्धव्रता।
नैवैवं विवदामहे न च वयं देव प्रियं ब्रूमहे
यत्सत्यं रमणीयता परिणतिस्त्वय्येव पारं गता।।१००।।

हे देव ! इस जगत् मे सरसधारावाही सहस्र–सहस्र व्यक्ति क्यो न हों, आपकी कमनीयता के परिमल–लोभी किसी पद्धति विशेष मे आनन्द निष्ठायुक्त व्यक्ति ही क्यों न हो, मेरा उनसे कोई विवाद नहीं और न मैं प्रिय वचनों से उनकी स्तुति ही करता हूँ, किन्तु जो सत्य है, उसे कहता हूँ कि रमणीयता ने तो आप मे ही पराकाष्ठा प्राप्त की है।।१००।।

गलद्व्रीडा लोलामदनविनता–गोपवनिता
मदस्फीतं वीतं किमपि मधुरा चापलधुरा।
समुज्जृम्भा गुम्फा मधुरिमकिरां मादृशगिरां
त्वयि स्थाने याते दधति चपलं जन्म–सफलम्।।१०१।।

लज्जारहित, चचल, आपके प्रेम के वशीभूत व्रजगोपियों ने जैसे तारुण्यसीम आपको प्राप्त कर अपना जीवन सफल किया है, उसी प्रकार माधुर्यादियुक्त मेरी वाणी ने भी आपका आश्रय लेकर सुसज्जित–गुम्फित होकर मेरे चंचल जीवन को सफलता प्रदान की है।।१०१।।

भवनं भुवनं विलासिनी श्रीस्तनयस्तामरसासनः स्मरश्च।
परिचारपरंपराः सुरेन्द्रा स्तदपि त्वच्चरितं विभो विचित्रम्।।१०२।।

हे विभो ! समस्त भुवन (ब्रह्माण्ड) आपके विलासभवन हैं, लक्ष्मीदेवी आपकी विलासिनी है, कमलासन ब्रह्मा एव कामदेव आपके पुत्र हैं, इन्द्रादि देवतागण परिवार–परम्परा से आपके सेवक हैं, तथापि आपका जो व्रजचरित्र है–(रासमहोत्सव मे श्रीव्रजगोपियो के साथ जो विलास–चरित्र हैं) वह विचित्र है।।१०२।।

देवस्त्रिलोकी-सौभाग्य कस्तूरी-मकरांकुरः।
जीयाद् व्रजांगनानंग केलिलालित-विभ्रमः।।१०३।।

त्रिभुवन के सौभाग्य–व्यंजक कस्तूरी–मकराकुरों से शोभित श्रीव्रजांगनाओं की कामकेलि द्वारा जिनका विलास मधुरातिमधुर हो उठा है, उन रासक्रीड़ापरायण श्रीकृष्णदेव की जय हो।।१०३।।

प्रेमदं च मे कामदं च मे वेदनं च मे वैभवं च मे।
जीवनं च मे जीवितं च मे दैवतं च मे देव नापरम्।।१०४।।

हे कृष्ण ! आप ही मेरे प्रेमप्रदाता हो, अभीष्टपूरक हो। आप ही मेरे ज्ञान–प्रदाता एवं मेरे वैभव हो। आप ही मेरे जीवन हो, जीवन हेतु हो और आप ही मेरे इष्टदेव हो; आपको छोड़कर मेरा और कुछ नहीं।।१०४।।

माधुर्येण विवर्द्धन्तां वाचो नस्तव वैभवे।
चापल्येन विवर्द्धतन्तां चिन्ता नस्तव शैशवे।।१०५।।

आपके रूप–लावण्यादि वैभव के वर्णन करने मे आपके माधुर्य के साथ मेरी वाणी भी वृद्धि लाभ करे और आपके कैशोर स्वरूप के चिन्तन मे मेरी चपलता की वृद्धि हो।।१०५।।

यानि त्वच्चरितामृतानि रसनालेह्यानि धन्यात्मनां
ये वा शैशवचापल व्यतिकरा राधावरोधोन्मुखाः।
या वा भावितवेणुगीतगतयो लीला मुखांभोरुहे
धारावाहिकया वहन्तु हृदये तान्येव मे।।१०६।।

आपके जिन समस्त चरित्रों को धन्यातिधन्य महत् पुरुष रसना से आस्वादन करते हैं, श्रीराधाजी को रास्ते में रोकना आदि से लेकर जो आपका कैशोर–चापल्य है, वेणुगीत–लहरी द्वारा उद्भासित आपके मुखकमल से जो–जो लीलाऐं लक्षित होती हैं, हे कृष्ण ! वे समस्त लीलाऐं धारावाहित भाव से मेरे हृदय में प्रवाहित हों।।१०६।।

भक्तिस्त्वयि स्थिरतरा भगवन्यदि स्याद्-
दैवेन नः फलति दिव्य किशोरमूर्तिः।
मुक्तिः स्वयं मुकुलितांजलि सेवतेऽस्मान्-
धर्मार्थ कामगतयः समय प्रतीक्षाः।।१०७।।

हे भगवन् ! आपमें यदि मेरी भक्ति स्थिरता को प्राप्त करे, तो आपकी दिव्य किशोरमूर्ति अपने आप ही मुझे दर्शन देगी। फिर मुक्ति स्वयं आकर हाथ जोड़कर मेरी सेवा में लग जायेगी तथा धर्म–अर्थ–काम ये तीनों तो सेवा के लिए समय की प्रतीक्षा करते रह जायेंगे।।१०७।।

जय जय जय देव देव देव, त्रिभुवन मंगल दिव्यनामधेय।
जय जय जय देव कृष्णदेव श्रवण-मनोनयनामृतावतार।।१०८।।

हे देव ! आपकी जय हो, हे देव ! आपकी जय हो, हे देव ! आपकी जय हो। हे त्रिभुवन मंगलकारी दिव्य कृष्णनामधारि ! आपकी जय हो। हे नामरूपदेव ! आपकी जय हो, हे देवतावृन्द हे पूज्य कृष्णदेव ! आपकी जय हो। हे श्रवण–मन–नयनों के अमृतावतार ! आपकी जय हो।।१०८।।

तुभ्यं निर्भर हर्ष वर्ष विवशा-वेशस्फुटाविर्भव-
द्भूयश्चापलभूषितेषु सुकृतां भावेषु निर्भाषिने।
श्रीमद्गोकुलमण्डनाय मनसां वाचां च दूरस्फुर-
न्माधुर्यैकमहार्णवाय महसे कस्मैचिदस्मै नमः।।१०६।।

पुण्यात्मा भक्तजन आपकी दर्शनाकांक्षा से परमानन्द के वशीभूत होकर एक अनिर्वचनीय आवेशवश चित्त की असाधारण चंचलता से विभूषित होकर आपके जिस रूप के दर्शन करते हैं, जो परमैश्वर्य–माधुर्यमण्डित श्रीगोकुल का विभूषण–मणि है, जो मन–वाणी से अगोचर है एवं माधुर्य का एक महासागर स्वरूप है, मैं उसकी वन्दना करता हूँ।।१०६।।

ईशानदेव-चरणाभरणेन नीवी-दामोदर-स्थिर-यशःस्तवकोद्भवेन।
लीलाशुकेन रचितं तव कृष्णदेव कर्णामृतं वहतु कल्पशतान्तरेऽपि।।११०

श्रीराधा–विलासी कृष्ण के चरण–चंचरीक से तथा नीवी–दामोदर (श्रीराधा की कांची द्वारा कटिबद्ध श्रीकृष्ण) के यश से गुम्फित, लीलाशुक बिल्वमंगल द्वारा रचित यह आपका 'कृष्णकर्णामृत' हे कृष्णदेव ! कल्पकल्पान्तरों तक भक्तों के हृदय में आनन्द प्रवाह प्रकाशित करता रहे।।११०।।

धन्यानां सरसानुलाप-सरणी सौरभ्यमभ्यस्यतां
कर्णानां विवरेषु कामपि सुधावृष्टिं दुहानं मुहुः।
वन्यानां सुदृशां मनोनयनयोर्मग्नस्य देवस्य नः
कर्णानां वचसां विजृम्भितमहो कृष्णस्य कर्णामृतम्।।१११।।

सरस मधुरभक्तियुक्त अनुलाप सौरभ–लहरी से जो सुशोभित है, धन्यतम भक्तों के कानों में जो एक अनिर्वचनीय सुधा वर्षण करने वाला है, मनोहर सुनयनी ब्रजसुन्दरियों में मन–नयन लगानेवाले मग्नचित्त श्रीकृष्ण के कानों का एवं वचनों का यह विलासरूप ''श्रीकृष्णकर्णामृत''–काव्य मेरे किसी सौभाग्य का ही फल है।।१११।।

अनुग्रह-द्विगुण-विशाललोचनैरनुस्मरन्मृदु-मुरली-रवामृतैः।
यतो यतः प्रसरति मे विलोचनं ततस्ततः स्फुरतु तवैव वैभवम्।।११२।।

मेरे ऊपर अनुग्रह के कारण आपके जो नयन दुगुने प्रफुल्लित हुए हैं उनका तथा आपकी मुरली की मधुरध्वनि सुधा का स्मरण करते–करते जहाँ भी मेरे नेत्र पड़ें, वहाँ ही आपका यह सौन्दर्य माधुर्यमय विग्रह स्फुरित हो–सर्वत्र आपका ही मैं दर्शन प्राप्त करता रहूँ।।११२।।

इति श्रीलीलाशुकबिल्वमंगलठक्कुर-विरचितं
श्रीकृष्णकर्णामृतम् समाप्तम्।

– • –

।। श्रीहरिः ।।

श्रीलीलाशुक बिल्वमंगलाचार्यविरचितं

श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्रम्

अग्रे कुरूणामथ पाण्डवानां दुःशासनेनाहृतवस्त्रकेशा।
कृष्णा तदाक्रोशदनन्यनाथा गोविन्द दामोदर माधवेति।।१।।

(जिस समय) कौरव और पाण्डवों के सामने भरी सभा में दुःशासन ने द्रौपदी के वस्त्र और बालों को पकड़कर खींचा, उस समय अपना कोई दूसरा नाथ न जानकर द्रौपदी ने रोकर पुकारा—'हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव ! मेरी रक्षा करो।।१।।

श्रीकृष्ण विष्णो मधुकैटभारे भक्तानुकम्पिन् भगवन् मुरारे।
त्रायस्व मां केशव लोकनाथ गोविन्द दामोदर माधवेति।।२।।

'हे श्रीकृष्ण ! हे विष्णो ! हे मधु—कैटभ को मारनेवाले ! हे भक्तों के ऊपर अनुकम्पा करने वाले ! हे भगवन् ! हे मुरारे ! हे केशव ! हे लोकेश्वर ! हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव ! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो।।२।।

विक्रेतुकामाखिलगोपकन्या मुरारिपादार्पितचित्तवृत्तिः।
दध्यादिकं मोहवशादवोचद् गोविन्द दामोदर माधवेति।।३।।

जिनकी चित्तवृत्ति मुरारि के चरणकमलों में लगी हुई है वे सभी गोपकन्याएँ दूध—दही बेचने की इच्छा से घर से चलीं। उनका मन तो मुरारि के पास था; अतः प्रेमवश सुध—बुध भूल जाने के कारण 'दही लो री दही' इसके स्थान में जोर—जोर से कोई 'गोविन्द ! दामोदर ! माधव !' ले लो री पुकारने लगीं।।३।।

उलूखलेसम्भृततण्डुलांश्च संघट्टयन्त्यो मुसलैः प्रमुग्धाः।
गायन्ति गोप्यो जनितानुरागा गोविन्द दामोदर माधवेति।।४।।

ओखलो मे धान भरे हुए हैं, उन्हे मुग्धा गोप–रमणियाँ मूसलो से कूट रही हैं और कूटते–कूटते कृष्णप्रेम मे विभोर होकर 'गोविन्द ! दामोदर ! माधव !' इस प्रकार गायन करती जाती है।।४।।

काचित्कराम्भोजपुटे निषण्णं क्रीडाशुकं किंशुरक्ततुण्डम्।
अध्यापयामास सरोरुहाक्षी गोविन्द दामोदर माधवेति।।५।।

कोई कमलनयनी बाला मनोविनोद के लिए पाले हुए अपने करकमल पर बैठे किंशुककुसुम के समान रक्तवर्ण चोंचवाले शुक को पढ़ा रही है, पढ़ो तो तोता ! 'गोविन्द दामोदर ! माधव !'।।५।।

गृहे गृहे गोपवधूसमूहः प्रतिक्षणं पिंजरसारिकाणाम्।
स्खलद्गिरं वाचयितुं प्रवृत्तो गोविन्द दामोदर माधवेति।।६।।

प्रत्येक घर मे समूह–की–समूह गोपागनाएँ पिंजरो मे पाली हुई अपनी मैनाओं से उनकी लड़खड़ाती हुई वाणी को क्षण–क्षण में 'हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव !' इत्यादि रूप से कहलाने में लगी रहती हैं।।६।।

पर्य्यंकिकाभाजमलं कुमारं प्रस्वापयन्त्योऽखिलगोपकन्याः।
जगुः प्रबन्धं स्वरतालबन्धं गोविन्द दामोदर माधवेति।।७।।

पालने में पौढ़े हुए अपने नन्हे बच्चे को सुलाती हुई सभी गोपकन्याएँ ताल–स्वर के साथ 'गोविन्द ! दामोदर ! माधव !' इस पद को ही गाती जाती हैं।।७।।

रामानुजं वीक्षणकेलिलोलं गोपी गृहीत्वा नवनीतगोलम्।
आबालकं बालकमाजुहाव गोविन्द दामोदर माधवेति।।८।।

हाथ मे माखन का गोला लेकर मैया यशोदा ने आँखमिचौनी की क्रीडा में व्यस्त बलराम के छोटे भाई श्रीकृष्ण को बालकों के बीच में पकड़कर पुकारा–'अरे गोविन्द ! अरे दामोदर ! अरे माधव ! इधर तो आ।।८।।

विचित्रवर्णाभरणाभिरामेऽभिधेहि वक्त्राम्बुजराजहंसि।
सदा मदीये रसनेऽग्ररंगे गोविन्द दामोदर माधवेति।।९।।

विचित्र वर्णमय आभरणों से अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होनेवाली हे मुखकमल की राजहंसीरूपिणी मेरी रसने ! तू सर्वप्रथम 'गोविन्द ! दामोदर ! माधव !' इस ध्वनि का ही विस्तार कर।।९।।

अंकाधिरूढं शिशुगोपगूढं स्तनं धयन्तं कमलैककान्तम्।
सम्बोधयामास मुदा यशोदा गोविन्द दामोदर माधवेति।।१०।।

अपनी गोद में बैठकर दूध पीते हुए बालगोपालरूपधारी भगवान् लक्ष्मीकान्त को लक्ष्य करके प्रेमानन्द में मग्न हुई यशोदा मैया इस प्रकार बुलाया करती हैं–'ऐ मेरे गोविन्द ! ऐ मेरे दामोदर ! ऐ मेरे माधव ! जरा बोल तो सही।।१०।।

क्रीडन्तमन्तर्व्रजमात्मजं स्वं समं वयस्यैः पशुपालबालैः।
प्रेम्णा यशोदा प्रजुहाव कृष्णं गोविन्द दामोदर माधवेति।।११।।

अपने समवयस्क गोपबालकों के साथ गोष्ठ में खेलते हुए अपने प्यारे पुत्र कृष्ण को यशोदा मैया अत्यन्त स्नेह से पुकारती हैं–'अरे ओ गोविन्द ! ओ दामोदर ! ओ माधव !' (कहाँ चला गया ?)।।११।।

यशोदया गाढमुलूखलेन गोकण्ठपाशेन निबध्यमानः।
रुरोद मन्दं नवनीतभोजी गोविन्द दामोदर माधवेति।।१२।।

अधिक चपलता करने के कारण यशोदा मैया ने गौ बाँधने की रस्सी से खूब कसकर ओखली के साथ उस घनश्याम को बाँध दिया, तब तो माखनभोगी कृष्ण धीरे–धीरे (आँखें मलते हुए) सिसक–सिसककर गोविन्द ! दामोदर ! माधव ! कहते हुए रोने लगे।।१२।।

निजांगने कंकणकेलिलोलं गोपी गृहीत्वा नवनीतगोलम्।
आमर्दयत्पाणितलेन नेत्रे गोविन्द दामोदर माधवेति।।१३।।

श्रीनन्दनन्दन अपने ही घर के आँगन में अपने हाथ के कंकण से खेलने में लगे हुए हैं, उसी समय मैया ने धीरे से जाकर उनके दोनों कमलनयनों को अपनी हथेली से मूँद लिया तथा दूसरे हाथ में

नवनीत का गोला लेकर प्रेमपूर्वक कहने लगी– 'गोविन्द ! दामोदर ! माधव !' (यह माखन खालो)।।१३।।

गृहे गृहे गोपवधूकदम्बाः सर्वे मिलित्वा समवाययोगे।
पुण्यानि नामानि पठन्ति नित्यं गोविन्द दामोदर माधवेति।।१४।।

व्रज के प्रत्येक घर में गोपागनाएँ एकत्र होने का अवसर पाने पर झुंड–के–झुंड आपस मे मिलकर उन मनमोहन माधव के गोविन्द दामोदर माधव इन पवित्र नामों को पढ़ा करती हैं।।१४।।

मन्दारमूले वदनाभिरामं बिम्बाधरे पूरितवेणुनादम्।
गोगोपगोपीजनमध्यसंस्थं गोविन्द दामोदर माधवेति।।१५।।

जिनका मुखारविन्द बड़ा ही मनोहर है, जो अपने बिम्ब के समान अरुण अधरों पर रखकर वंशी की मधुर ध्वनि कर रहे हैं तथा जो कदम्ब के तले गौ, गोप और गोपियों के मध्य में विराजमान हैं उन भगवान् का 'हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव !' इस प्रकार कहते हुए सदा स्मरण करना चाहिए।।१५।।

उत्थाय गोप्योऽपररात्रभागे स्मृत्वा यशोदासुतबालकेलिम्।
गायन्ति प्रोच्चैर्दधि मन्थयन्त्यो गोविन्द दामोदर माधवेति।।१६।।

व्रजांगनाएँ ब्राह्ममुहूर्त में उठकर और उन यशुमतिनन्दन की बालक्रीड़ाओं की बातों को याद करके दही मथते–मथते 'गोविन्द ! दामोदर ! माधव !' इन पदों को उच्च स्वर से गाया करती हैं।।१६।।

जग्धोऽथ दत्तो नवनीतपिण्डो गृहे यशोदा विचिकित्सयन्ती।
उवाच सत्यं वद हे मुरारे गोविन्द दामोदर माधवेति।।१७।।

(दधि मथकर माता ने माखन का लौंदा रख दिया है। माखनभोगी श्रीकृष्ण की दृष्टि पड़ गयी, झट उसे धीरे से उठा लाये) कुछ खाया, कुछ बाँट दिया। जब ढूँढ़ते–ढूँढ़ते न मिला तो यशोदा मैया ने आपपर सन्देह करते हुए पूछा– 'हे मुरारे ! हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव ! ठीक–ठीक बता माखन का लौंदा कहाँ गया ?।।१७।।

अभ्यर्च्य गेहं युवतिः प्रवृद्ध प्रेमप्रवाहा दधि निर्ममन्थ।
गायन्ति गोप्योऽथ सखीसमेता गोविन्द दामोदर माधवेति।।१८।।

जिसके हृदय मे प्रेम की बाढ़ आ रही है ऐसी माता यशोदा घर को लीपकर दही मथने लगी। तब और सब गोपांगनाएँ तथा सखियाँ मिलकर 'गोविन्द ! दामोदर ! माधव !' इस पद का गान करने लगीं।।१८।।

क्वचित् प्रभाते दधिपूर्णपात्रे निक्षिप्य मन्थं युवती मुकुन्दम्।
आलोक्य गानं विविधं करोति गोविन्द दामोदर माधवेति।।१९।।

किसी दिन प्रातःकाल ज्यों ही माता यशोदा दहीभरे भाण्ड में मथानी को छोड़कर उठी त्यों ही उसकी दृष्टि शय्या पर बैठे हुए मनमोहन मुकुन्दपर पड़ी। लीला को देखते ही वह प्रेम से पगली हो गयी और 'मेरा गोविन्द ! मेरा दामोदर ! मेरा माधव !' ऐसा कहकर तरह–तरह से गाने लगी।।१९।।

क्रीडापरं भोजनमज्जनार्थे हितैषिणी स्त्री तनुज यशोदा।
आजूहवत् प्रेमपरिप्लुताक्षी गोविन्द दामोदर माधवेति।।२०।।

क्रीड़ाविहारी मुरारि बालकों के साथ खेल रहे हैं (अभीतक न स्नान किया है, न भोजन) अतः प्रेम में विह्वल हुई माता उन्हें स्नान और भोजन के लिए पुकारने लगी–'अरे ओ गोविन्द ! ओ दामोदर ! ओ माधव ! (आ बेटा ! आ पानी ठण्डा हो रहा है, जल्दी से नहाले और कुछ खाले)।।२०।।

सुखं शयानं निलये च विष्णु देवर्षिमुख्या मुनयः प्रपन्नाः।
तेनाच्युते तन्मयतां व्रजन्ति गोविन्द दामोदर माधवेति।।२१।।

श्रीनारद आदि ऋषि 'हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव !' इस प्रकार प्रार्थना करते हुए घरमें सुखपूर्वक सोये हुए उन पुराणपुरुष बालकृष्ण की शरण में आये; उससे उन्होंने श्रीअच्युत में तन्मयता प्राप्त कर ली।।२१।।

विहाय निद्रामरुणोदये च विधाय कृत्यानि च विप्रमुख्याः।
वेदावसाने प्रपठन्ति नित्यं गोविन्द दामोदर माधवेति।।२२।।

वेदज्ञ ब्राह्मण प्रातःकाल उठकर और अपने नित्य–नैमित्तिक कर्मों को पूर्णकर वेदपाठ के अन्त में नित्य ही 'गोविन्द ! दामोदर ! माधव !' इन मंजुल नामों का कीर्तन करते हैं।।२२।।

वृन्दावने गोपगणाश्च गोप्यो विलोक्य गोविन्दवियोगखिन्नाम्।
राधां जगुः साश्रुविलोचनाभ्यां गोविन्द दामोदर माधवेति।।२३।।

श्रीवृन्दावन में श्रीवृषभानुकुमारी को बनवारी के वियोग से विह्वल देख गोपगण और गोपियाँ अपने कमलनयनों से नीर बहाते हुए 'हा गोविन्द ! हा दामोदर ! हा माधव !' कहकर पुकारने लगे।।२३।।

प्रभातसंचारगता नु गावस्तद्रक्षणार्थं तनयं यशोदा।
प्राबोधयत् पाणितलेन मन्दं गोविन्द दामोदर माधवेति।।२४।।

प्रातःकाल होने पर जब गौऐं वन में चरने चली गयीं तब उनकी रक्षा के लिए यशोदा मैया शय्यापर शयन करते हुए बालकृष्ण को मीठी–मीठी थपकियों से जगाती हुई बोलीं–'बेटा गोविन्द ! मुन्ना माधव ! लाला दामोदर ! (उठ, जा गौओं को चरा ला)।।२४।।

प्रबालशोभा इव दीर्घकेशा वाताम्बुपर्णाशनपूतदेहाः।
मूले तरूणां मुनयः पठन्ति गोविन्द दामोदर माधवेति।।२५।।

केवल वायु, जल और पत्तों के खाने से जिनके शरीर पवित्र हो गये हैं, ऐसे प्रवाल के समान शोभायमान लम्बी–लम्बी एवं कुछ अरुण रंग की जटाओं वाले मुनिगण (पक्षीगण) पवित्र वृक्षों की छाया में विराजमान होकर निरन्तर 'गोविन्द ! दामोदर ! माधव !' इन नामों का पाठ करते हैं।।२५।।

एवं ब्रुवाणा विरहातुरा भृशं व्रजस्त्रियः कृष्णविषक्तमानसाः।
विसृज्य लज्जां रुरुदुः स्म सुस्वरं गोविन्द दामोदर माधवेति।।२६।।

श्रीवनमाली के विरह में विह्वल हुई व्रजांगनाएँ उनके विषय में

विविध प्रकार की बातें कहती हुई लोक–लज्जा को तिलांजलि दे बड़े आर्त्तस्वर से 'हा गोविन्द ! हा दामोदर ! हा माधव !' कहकर जोर–जोर से रोने लगीं।।२६।।

गोपी कदाचिन्मणिपिंजरस्थं शुकं वचो वाचयितुं प्रवृत्ता।
आनन्दकन्द व्रजचन्द्र कृष्ण गोविन्द दामोदर माधवेति।।२७।।

गोपी श्रीराधिकाजी किसी दिन मणियों के पिंजड़े में पले हुए तोते से बार–बार 'आनन्दकन्द ! व्रजचन्द्र ! कृष्ण ! गोविन्द ! दामोदर ! माधव !' इन नामों को बुलवाने लगीं।।२७।।

गोवत्सबालैः शिशुकाकपक्षं बध्नन्तमम्भोजदलायताक्षम्।
उवाच माता चिबुकं गृहीत्वा गोविन्द दामोदर माधवेति।।२८।।

कमलनयन श्रीकृष्णचन्द्र को किसी गोपबालक की चोटी को बछड़े की पूँछ के बालों से बाँधते देख मैया प्यार से उनकी ठोढ़ी को पकड़कर कहने लगीं–'मेरा गोविन्द ! मेरा दामोदर ! मेरा माधव ! यह क्या कर रहा है तू।।२८।।

प्रभातकाले वरवल्लवौघा गोरक्षणार्थं धृतवेत्रदण्डाः।
आकारयामासुरनन्तमाद्यं गोविन्द दामोदर माधवेति।।२९।।

प्रातःकाल हुआ है, ग्वाल–बालों की मित्रमण्डली हाथों में बेंत की छड़ी और लाठी ले गौओं को चराने के लिए निकली है, तब वे अपने प्यारे सखा अनन्त आदिपुरुष श्रीकृष्ण को 'गोविन्द ! दामोदर ! माधव !' कह–कहकर बुलाने लगे।।२९।।

जलाशये कालियमर्दनाय यदा कदम्बादपतन्मुरारिः।
गोपांगनाश्चुक्रुशुरेत्य गोपा गोविन्द दामोदर माधवेति।।३०।।

जिस समय कालियनाग का मर्दन करने के लिए कन्हैया कदम्ब के वृक्ष से कूदे, उस समय गोपांगनाएँ और गोपगण वहाँ आकर 'हा गोविन्द ! हा दामोदर ! हा माधव !' कहकर बड़े जोर से रोने लगे।।३०।।

अक्रूरमासाद्य यदा मुकुन्दश्चापोत्सवार्थं मथुरां प्रविष्टः।
तदा स पौरैर्जयतीत्यभाषि गोविन्द दामोदर माधवेति।।३१।।

जिस समय श्रीकृष्णचन्द्र ने कंस के धनुर्यज्ञोत्सव में सम्मिलित होने के लिए अक्रूरजी के साथ मथुरा में प्रवेश किया, उस समय पुरवासीजन 'हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव !' तुम्हारी जय हो, जय हो, ऐसा कहने लगे।।३१।।

कंसस्य दूतेन यदैव नीतौ वृन्दावनान्ताद् वसुदेवसूनू।
रुरोद गोपी भवनस्य मध्ये गोविन्द दामोदर माधवेति।।३२।।

जब कंस के दूत अक्रूरजी वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण और बलराम को वृन्दावन से दूर ले गये, तब अपने घरमें बैठी हुई यशोदाजी 'हा गोविन्द ! हा दामोदर ! हा माधव !' कह–कहकर रुदन करने लगीं।।३२।।

सरोवरे कालियनागबद्धं शिशुं यशोदातनयं निशम्य।
चक्रुर्लुठन्त्यः पथि गोपबाला गोविन्द दामोदर माधवेति।।३३।।

यशोदानन्दन बालक श्रीकृष्ण को कालियहद में कालियनाग से जकड़ा हुआ सुनकर गोपबालाएँ रास्ते में गिरती–पड़ती हुई 'हा गोविन्द ! हा दामोदर ! हा माधव !' कहकर जोरों से रुदन करने लगीं।।३३।।

अक्रूरयाने यदुवंशनाथं संगच्छमानं मथुरां निरीक्ष्य।
ऊचुर्वियोगात् किल गोपबाला गोविन्द दामोदर माधवेति।।३४।।

अक्रूर के रथपर चढ़कर मथुरा जाते हुए श्रीकृष्ण को देख समस्त गोपबालाएँ वियोग के कारण अधीर होकर कहने लगीं–'हा गोविन्द ! हा दामोदर ! हा माधव !' (हमे छोड़कर तुम कहाँ जा रहे हो)।।३४।।

चक्रन्द गोपी नलिनीवनान्ते कृष्णेन हीना कुसुमे शयाना।
प्रफुल्लनीलोत्पललोचनाभ्यां गोविन्द दामोदर माधवेति।।३५।।

श्रीराधिकाजी श्रीकृष्ण के अलग हो जाने पर कमलवन में कुसुम

शय्यापर सोकर अपने विकसित कमलसदृश लोचनों से आँसू बहाती हुई 'हा गोविन्द ! हा दामोदर ! हा माधव !' कहकर क्रन्दन करने लगी।।३५।।

मातापितृभ्यां परिवार्यमाणा गेहं प्रविष्टा वा विललाप गोपी।
आगत्य मां पालय विश्वनाथ गोविन्द दामोदर माधवेति।।३६।।

माता–पिता आदि से रोकी हुई श्रीराधिकाजी घर के भीतर प्रवेशकर विलाप करने लगीं कि हे विश्वनाथ ! हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव ! तुम आकर मेरी रक्षा करो ! रक्षा करो !!' ।।३६।।

वृन्दावनस्थं हरिमाशु बुद्ध्वा गोपी गता कापि वनं निशायाम्।
तत्राप्यदृष्ट्वातिभयादवोचद् गोविन्द दामोदर माधवेति।।३७।।

रात्रि का समय है, किसी गोपी को भ्रम हो गया है कि वृन्दावन–बिहारी इस समय वन में विराजमान हैं। बस, फिर क्या था, झट उसी ओर चल दी; किन्तु जब उसने निर्जन वन में वनमाली को न देखा, तब डर से काँपती हुई 'हा गोविन्द ! हा दामोदर ! हा माधव !' कहने लगी।।३७।।

सुखं शयाना निलये निजेऽपि नामानि विष्णोः प्रवदन्ति मर्त्याः।
ते निश्चितं तन्मयतां व्रजन्ति गोविन्द दामोदर माधवेति।।३८।।

(वन में न भी जायें) अपने घर में ही सुख से शय्यापर शयन करते हुए भी जो लोग 'हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव !' इन श्रीकृष्ण भगवान् के पवित्र नामों को निरन्तर कहते हैं, वे निश्चय ही भगवान् की तन्मयता प्राप्त कर लेते हैं।।३८।।

सा नीरजाक्षीमवलोक्य राधां रुरोद गोविन्दवियोगखिन्नाम्।
सखी प्रफुल्लोत्पललोचनाभ्यां गोविन्द दामोदर माधवेति।।३९।।

कमललोचना श्रीराधा को श्रीगोविन्द की विरहव्यथा से पीड़ित देख कोई सखी अपने प्रफुल्ल कमलसदृश नयनों से नीर बहाती हुई 'हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव !' कहकर रुदन करने लगी।।३९।।

जिह्वे रसज्ञे मधुरप्रिया त्वं सत्यं हितं त्वां परमं वदामि।
आवर्णयेथा मधुराक्षराणि गोविन्द दामोदर माधवेति।।४०।।

हे रसों को चखनेवाली जिह्वे ! तुझे मीठी चीज बहुत अधिक प्यारी लगती है, इसलिए मैं तेरे हित की एक बहुत ही सुन्दर और सच्ची बात बताता हूँ। तू निरन्तर 'हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव !' इन मधुर मंजुल नामो की आवृत्ति किया कर।।४०।।

आत्यन्तिकव्याधिहरं जनानां चिकित्सकं वेदविदो वदन्ति।
संसारतापत्रयनाशबीजं गोविन्द दामोदर माधवेति।।४१।।

वेदवेत्ता विद्वान् 'गोविन्द ! दामोदर ! माधव !' इन नामों को ही लोगों की बड़ी–से–बड़ी विकट व्याधि को विच्छेद करनेवाला वैद्य और संसार के आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनो तापों के नाश की बढ़िया औषध बतलाते हैं।।४१।।

ताताज्ञया गच्छति रामचन्द्रे सलक्ष्मणेऽरण्यचये ससीते।
चक्रन्द रामस्य निजा जनित्री गोविन्द दामोदर माधवेति।।४२।।

अपने पिता दशरथ की आज्ञा से भाई लक्ष्मण और जनकनन्दिनी सीता के साथ श्रीरामचन्द्रजी बीहड़ वनों के लिए चलने लगे, तब उनकी माता श्रीकौशल्याजी 'हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव !' ऐसा कहकर जोरों से विलाप करने लगीं।।४२।।

एकाकिनी दण्डककाननान्तात् सा नीयमाना दशकन्धरेण।
सीता तदाक्रन्ददनन्यनाथा गोविन्द दामोदर माधवेति।।४३।।

जब राक्षसराज रावण पंचवटी में जानकीजी को अकेली देख उन्हें हरकर ले जाने लगा, तब रामचन्द्रजी के सिवा जिनका दूसरा कोई स्वामी नहीं है ऐसी सीताजी 'हा गोविन्द ! हा दामोदर ! हा माधव !' कहकर जोरों से रुदन करने लगीं।।४३।।

रामाद्वियुक्ता जनकात्मजा सा विचिन्तयन्ती हृदि रामरूपम्।
रुरोद सीता रघुनाथ पाहि गोविन्द दामोदर माधवेति।।४४।।

रथ में बिठाकर ले जाते समय रावण के साथ, रामवियोगिनी सीता हृदय में अपने स्वामी श्रीरामचन्द्रजी का ध्यान करती हुई 'हा रघुनाथ ! हा गोविन्द ! हा दामोदर ! हा माधव !' मेरी रक्षा करो, इस प्रकार रोती हुई जाने लगी।।४४।।

प्रसीद विष्णो रघुवंशनाथ सुरासुराणां सुखदुःखहेतो।
रुरोद सीता तु समुद्रमध्ये गोविन्द दामोदर माधवेति।।।।४५।।

जब रावण के साथ सीताजी समुद्र के मध्य में पहुँचीं, तब यह कहकर जोर–जोरसे रुदन करने लगीं–'हे विष्णो ! रघुकुलपते ! हे देवताओं को सुख और असुरों को दुःख देने वाले ! हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव !' मुझपर प्रसन्न होईये, प्रसन्न होईये।।४५।।

अन्तर्जले ग्राहगृहीस्पादो विसृष्टविक्लिष्टसमस्तबन्धुः।
तदा गजेन्द्रो नितरां जगाद् गोविन्द दामोदर माधवेति।।४६।।

पानी पीते समय जल के भीतर जब ग्राह ने गज का पैर पकड़ लिया और उसका समस्त दुःखी बन्धुओं से साथ छूट गया, तब वह गजराज अधीर होकर अनन्यभाव से निरन्तर 'हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव !' ऐसे पुकारने लगा।।४६।।

हंसध्वजः शंखयुतो ददर्श पुत्रं कटाहे प्रपतन्तमेनम्।
पुण्यानि नामानि हरेर्जपन्तं गोविन्द दामोदर माधवेति।।४७।।

अपने पुरोहित शंखमुनि के साथ राजा हंसध्वज ने अपने पुत्र सुधन्वा को तप्त तैल की कड़ाही में कूदते समय 'हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव !' इन भगवान् के परम पावन नामों का जप करते हुए देखा।।४७।।

दुर्वाससो वाक्यमुपेत्य कृष्णा सा चाब्रवीत् काननवासिनीशम्।
अन्तःप्रविष्टं मनसाजुहाव गोविन्द दामोदर माधवेति।।४८।।

(एक दिन द्रौपदी के भोजन कर लेने पर असमय में दुर्वासा ऋषि ने शिष्यों सहित आकर भोजन माँगा) तब वनवासिनी द्रौपदी ने भोजन देना स्वीकार कर अपने अन्तःकरण में स्थित श्रीश्यामसुन्दर को 'हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव !' कहकर बुलाया।।५८।।

ध्येयः सदा योगिभिरप्रमेयः चिन्ताहरश्चिन्तितपारिजातः।
कस्तूरिकाकल्पितनीलवर्णो गोविन्द दामोदर माधवेति।।४६।।

योगी भी जिन्हे ठीक–ठीक नही जान पाते, जो सभी प्रकार की चिन्ताओ को हरनेवाले और मनोवाछित वस्तुओ को देने के लिए कल्पवृक्ष के समान हैं तथा जिनके शरीर का वर्ण कस्तूरी के समान नीला है, उन्हे सदा ही 'गोविन्द ! दामोदर ! माधव !' इन नामो से स्मरण करना चाहिए।।४६।।

संसारकूपे पतितोऽत्यगाधे मोहान्धपूर्णे विषयाभितप्ते।
करावलम्बं मम देहि विष्णो गोविन्द दामोदर माधवेति।।५०।।

जो मोहरूपी अन्धकार से व्याप्त और विषयों की ज्वाला से सन्तप्त है, ऐसे अथाह संसाररूपी कूप मे मैं पड़ा हुआ हूँ। हे कृष्ण ! हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव ! मुझे अपने हाथ का सहारा दीजिए।।५०।।

त्वामेव याचे मम देहि जिह्वे समागते दण्डधरे कृतान्ते।
वक्तव्यमेवं मधुरं सुभक्त्या गोविन्द दामोदर माधवेति।।५१।।

हे जिह्वे ! मै तुझसे एक भिक्षा माँगता हूँ, तू ही मुझे दे। वह यह कि जब दण्डपाणि यमराज इस शरीर का अन्त करने आवें, तब बड़े ही प्रेम से गद्‌गद स्वर मे हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव !' इन मजुल नामो का उच्चारण करती रहना।।५१।।

भजस्व मन्त्रं भवबन्धमुक्त्यै जिह्वे रसज्ञे सुलभं मनोज्ञम्।
द्वैपायनाद्यैर्मुनिभिः प्रजप्तं गोविन्द दामोदर माधवेति।।५२।।

हे जिह्वे ! रसज्ञे ! संसाररूपी बन्धन को काटने के लिए तू सर्वदा 'हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव !' इस नामरूपी मन्त्र का जप किया कर, जो सुलभ एव सुन्दर है और जिसे व्यास, वशिष्ठादि ऋषियो ने भी जपा है।।५२।।

गोपाल वंशीधर रूपसिन्धो लोकेश नारायण दीनबन्धो।
उच्चस्वरैस्त्वं वद सर्वदैव गोविन्द दामोदर माधवेति।।५३।।

रे जिह्वे ! तू निरन्तर गोपाल ! वंशीधर ! रूपसिन्धो ! लोकेश ! नारायण ! दीनबन्धो ! गोविन्द ! दामोदर ! माधव ! इन नामों का उच्च स्वर से कीर्तन किया कर।।५३।।

जिह्वे सदैवं भज सुन्दराणि नामानि कृष्णस्य मनोहराणि।
समस्तभक्तार्तिविनाशनानि गोविन्द दामोदर माधवेति।।५४।।

हे जिह्वे ! तू सदा ही कृष्णचन्द्र के 'गोविन्द ! दामोदर ! माधव !' इन मनोहर मंजुल नामों को भजती रह। भक्तों के समस्त संकटों की ये निवृत्ति करने वाले हैं।।५४।।

गोविन्द गोविन्द हरे मुरारे गोविन्द गोविन्द मुकुन्द कृष्ण।
गोविन्द गोविन्द रथांगपाणे गोविन्द दामोदर माधवेति।।५५।।

हे जिह्वे ! 'गोविन्द ! गोविन्द ! हरे ! मुरारे ! गोविन्द ! गोविन्द ! मुकुन्द ! कृष्ण ! गोविन्द ! गोविन्द ! रथांगपाणे ! गोविन्द ! दामोदर ! माधव ! इन नामों को तू सदा जपती रह।।५५।।

सुखावसाने त्विदमेव सारं दुःखावसाने त्विदमेव गेयम्।
देहावसाने त्विदमेव जाप्यं गोविन्द दामोदर माधवेति।।५६।।

सुख के अन्त में यही सार है, दुःख की निवृत्ति के लिए यही कीर्तन करने योग्य है और शरीर का अन्त होने के समय भी यही मन्त्र जपने योग्य है, कि 'हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव !।।५७।।

दुर्वारवाक्यं परिगृह्य कृष्णा मृगीव भीता तु कथं कथंचित्।
सभां प्रविष्टा मनसाजुहाव गोविन्द दामोदर माधवेति।।५७।।

दुःशासन के दुर्निवार्य वचनों को स्वीकार कर मृग के समान भयभीत हुई द्रौपदी जिस–किसी तरह सभा में प्रवेशकर मन–ही मन 'गोविन्द ! दामोदर ! माधव ! इस प्रकार भगवान् का स्मरण करने लगी।।५७।।

श्रीकृष्ण राधावर गोकुलेश गोपाल गोवर्धननाथ विष्णो।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति।।५८।।

हे जिह्वे ! तू 'श्रीकृष्ण ! राधारमण ! व्रजराज ! गोपाल ! गोवर्धन नाथ ! विष्णो ! गोविन्द ! दामोदर ! माधव !' इस नामामृत का निरन्तर पान करती रह।।५८।।

श्रीनाथ विश्वेश्वर विश्वमूर्ते श्रीदेवकीनन्दन दैत्यशत्रो।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति।।५९।।

हे जिह्वे ! तू 'श्रीनाथ ! विश्वेश्वर ! श्रीदेवकीनन्दन ! असुरनिकन्दन ! गोविन्द ! दामोदर ! माधव ? इस नामामृत का निरन्तर पान करती रह।।५९।।

गोपीपते कंसरिपो मुकुन्द लक्ष्मीपते केशव वासुदेव।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति।।६०।।

हे जिह्वे ! तू 'गोपीपते ! कंसरिपो ! मुकुन्द ! लक्ष्मीपते ! केशव ! वासुदेव ! गोविन्द ! दामोदर ! माधव ! इस नामामृत का निरन्तर पान करती रह।।६०।।

गोपीजनाह्लादकर व्रजेश गोचारणारण्यकृतप्रवेश।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति।।६१।।

जो व्रजराज श्रीकृष्ण व्रजांगनाओं को आनन्दित करनेवाले हैं, जिन्होंने गौओं को चराने के लिए वन में प्रवेश किया है; हे जिह्वे ? तू उन्हीं मुरारि के 'गोविन्द, दामोदर, माधव, –इस नामामृत का निरन्तर पान करती रह।।६१।।

प्राणेश विश्वम्भर कैटभारे वैकुण्ठ नारायण चक्रपाणे-
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति।।६२।।

हे जिह्वे तू 'प्राणेश ! विश्वम्भर ! कैटभारे ! वैकुण्ठ ! नारायण ! चक्रपाणे ! गोविन्द दामोदर ! माधव !–इस नामामृत का निरन्तर पान करती रह।।६२।।

हरे मुरारे मधुसूदनाद्य श्रीराम सीतावर रावणारे।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति।।६३।।

'हे हरे ! हे मुरारे ! हे मधुसूदन ! हे सर्वादि पुरुष ! सीतापते श्रीराम ! हे रावणारे ! हे गोविन्द ! दामोदर ! माधव !' हे जिह्वे इस नामामृत का तू निरन्तर पान करती रह !।।६३।।

श्रीयादवेन्द्राद्रिधराम्बुजाक्ष गोगोपगोपीसुखदानदक्ष।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति।।६४।।

हे जिह्वे ! तू 'श्रीयदुकुलनाथ ! गिरिधर ! कमलनयन ! गौ, गोप और गोपियों के सुख देने में कुशल ! श्रीगोविन्द ! दामोदर ! माधव !'–इस नामामृत का निरन्तर पान करती रह !'।।६४।।

धराभरोत्तारणगोपवेष विहारलीलाकृतबन्धुशेष।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति।।६५।।

जिन्होंने पृथ्वी का भार उतारने के लिए सुन्दर गोप रूप धारण किया है और आनन्दमयी लीला करने के निमित्त ही शेषजी को अपना भाई बनाया है, उन नटनागर के 'गोविन्द ! दामोदर ! माधव !'–इस नामामृत का हे जिह्वे ! तू निरन्तर पान करती रह।।६५।।

बकीबकाघासुरधेनुकारे केशीतृणावर्तविघातदक्ष।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति।।६६।।

जो पूतना, बकासुर, अघासुर और धेनुकासुर आदि राक्षसों के शत्रु हैं और केशी तृणावर्त को पछाड़नेवाले हैं, हे जिह्वे ! उन असुरादि मुरारि के 'गोविन्द ! दामोदर ! माधव !' इस नामामृत का तू निरन्तर पान करती रह।।६६।।

श्रीजानकीजीवन रामचन्द्र निशाचरारे भरताग्रजेश।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति।।६७।।

'हे जानकीजीवन भगवान् राम ! हे दैत्यदलन भरताग्रज ! हे ईश ! हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव !'–इस नामामृत का हे जिह्वे ! तू निरन्तर पान करती रह।।६७।।

नारायणानन्द हरे नृसिंह प्रह्लादबाधाहर हे कृपालो।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति।।६८।।

'हे प्रह्लाद की बाधा हरनेवाले दयामय नृसिंह ! नारायण ! अनन्त ! हरे ! गोविन्द ! दामोदर ! माधव !'—इस नामामृत का हे जिह्वे ! तू निरन्तर पान करती रह।।६८।।

लीलामनुष्याकृतिरामरूप प्रतापदासीकृतसर्वभूप।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति।।६९।।

हे जिह्वे। जिन्होंने लीला ही से मनुष्यों की भी आकृति धारण कर रामरूप प्रकट किया है और अपने प्रबल पराक्रम से सभी भूपों को दास बना दिया है, तू उन नीलाम्बुज श्यामसुन्दर श्रीराम के 'गोविन्द ! दामोदर ! माधव !'—इस नामामृत का ही निरन्तर पान करती रह।।६९।।

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति।।७०।।

हे जिह्वे ! तू श्रीकृष्ण ! गोविन्द ! हरे ! मुरारे ! नाथ ! नारायण ! वासुदेव ! तथा गोविन्द ! दामोदर ! माधव !' इस नामामृत का ही निरन्तर प्रेमपूर्वक पान करती रह।।७०।।

वक्तुं समर्थोऽपि वक्ति कश्चिदहो जनानां व्यसनाभिमुख्यम्।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति।।७१।।

अहो ! मनुष्यों की विषय—लोलुपता कैसी आश्चर्यजनक है ? कोई—कोई तो बोलने में समर्थ होने पर भी भगवन्नाम का उच्चारण नहीं करते; किन्तु हे जिह्वे ! मैं तुझसे कहता हूँ, तू गोविन्द ! दामोदर ! माधव !—इस नामामृत का ही निरन्तर प्रेमपूर्वक पान करती रह।।७१।।

इस प्रकार लीलाशुक श्रीबिल्वमंगल आचार्यकृत
श्रीगोविन्ददामोदर स्तोत्र समाप्त हुआ।

• • •